इतिहास दिवाकर

त्रैमासिक अनुसंधान पत्रिका

वर्ष १, अंक २ आषाढ़ मास कलियुगाब्द ५११० जुलाई २००८

मार्गदर्शक :
मा. ठाकुर राम सिंह
डॉ० शिवाजी सिंह
श्री चेतराम
श्री इरविन खन्ना

सम्पादक :
डॉ० विद्या चन्द ठाकुर

सह सम्पादक
चेतराम गर्ग

सम्पादक मण्डल :
डॉ० रमेश शर्मा
डॉ०ओम प्रकाश शर्मा
प्रो० सतीश चन्द्र
सुश्री चारु मित्तल

टंकण एवं सज्जा :
अश्वनी कालिया

सम्पादकीय कार्यालय :
ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान,
नेरी, गांव—नेरी, डाकघर—खगल
जिला—हमीरपुर—१७७००१ (हि०प्र०)
फोन : ०१९७२—२०३०४४

मूल्यः
प्रति अंक —१५.०० रुपये
वार्षिक —६०.०० रुपये

प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वामी चेत राम। ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान नेरी, गांव नेरी, डा० खगल, जिला हमीरपुर — १७७ ००१ (हि०प्र०) से प्रकाशित तथा राकेश प्रिंटिंग प्रैस हमीरपुर (हि०प्र०) से मुद्रित। सम्पादक : डॉ० विद्याचन्द ठाकुर।

सूचना : पत्रिका में छपी सामग्री से सम्पादक का सहमत होना जरूरी नहीं। इस सम्बन्ध किसी भी कार्यवाही का निपटारा हमीरपुर न्यायालय में ही होगा।

अनुक्रमणिका

विषय	*लेखक*	*पृ.सं.*
सम्पादकीय		
काल तत्व (काल ज्ञान)	ठाकुर रामसिंह	१
जगत् विभूति महर्षि वेद व्यास	स्व. डॉ. वासुदेव अग्रवाल	६
समर्थ दर्शन मनाचे श्लोक	अनु. म.ग. सहस्रबुद्धे	१९
ऋषि परम्परा	डॉ. ओम प्रकाश शर्मा	२४
विविधा हिमाचल में देवी—देवताओं की अनूठी परम्परा	डॉ. सूरत ठाकुर	३२
गुरू गोविन्द सिंह तथा नादौन का युद्ध	डॉ. रमेश चन्द शर्मा	४४
ध्येय पथ शोध संस्थान की गतिविधियां		४६
चित्रावली		

सम्पादकीय

अतीत कभी व्यतीत नहीं होता

अतीत के सम्बन्ध में एक बौद्धिक समुदाय ऐसी सोच रखता है कि अतीत के बारे में सोचना पिछड़ेपन को दर्शाता है। गड़े मुर्दे उखाड़ने का क्या औचित्य है? ऐसी सोच उन्हीं लोंगों की हो सकती है जो केवल सतही आधार पर बौद्धिकता का लबादा ओढ़े हुए हैं। कोई भी विवेकशील व्यक्ति इस तथ्य को अमान्य नहीं कर सकता है कि काल एक निरन्तर प्रवाह है। अतीत, वर्तमान और भविष्य काल–प्रवाह के परस्पर अविभाज्य अवयव हैं। अतीत हमारा इतिहास है। इतिहास में अनेक अच्छी उपलब्धियों का वृत्तान्त मिलता है और घटित गलतियों का भी वर्णन होता है। इतिहास की गलतियों से मानव समाज को शिक्षा मिलती है कि उन गलतियों को न दोहराया जाए। इतिहास की उपलब्धियां समाज को ऊर्जा, प्रेरणा और आत्मविश्वास प्रदान करती हैं।

भारत के इतिहास का समुचित परिप्रेक्ष्य में चिन्तन करना है तो भारतीय कालगणना का ज्ञान होना अत्यावश्यक है। ठाकुर राम सिंह जी के लेख में इस विषय पर व्यापक प्रकाश डाला गया है। इस तिमाही के बीच आषाढ पूर्णिमा की तिथि 18 जुलाई को है। आषाढ़ पूर्णिमा महर्षि कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास की जन्म तिथि के रूप में व्यास पूर्णिमा कहलाती है। महर्षि व्यास भारतीय ज्ञान परम्परा के शीर्षस्थ गुरु हैं। अतः यह पूर्णिमा गुरु पूर्णिमा के नाम से प्रसिद्ध है। महर्षि वेद व्यास समस्त ज्ञान निधि की शक्ति सम्पन्न जगत विभूति है। भारतीय इतिहास और संस्कृति के मूर्धन्य विद्वान् डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल जी का 'महर्षि व्यास' शीर्षक से लिखित लेख इस अलौकिक जगत विभूति का सारगर्भित परिचय है।

राष्ट्र सन्त समर्थ गुरु रामदास जी के चतुर्थ जन्म शताब्दी के सम्मान एवं स्मरणाञ्जलि के रूप में 'समर्थ दर्शन' नामक स्तम्भ शुरू किया गया है। इस बार हम इस स्तम्भ के अन्तर्गत समर्थ गुरु रामदास द्वारा रचित 'मनाचे श्लोक' रचना के अनुकरणीय श्लोक दे रहे हैं। अन्य महत्त्वपूर्ण रचनाएं विविधा स्तम्भ के अन्तर्गत सम्मिलित है।

पत्रिका पाठकों के हाथों प्रवेशांक से भिन्न आकार में पंहुच रही है। भविष्य के लिए पत्रिका का यही आकार सुनिश्चित किया गया है।

अतीत व्यतीत नहीं होता। अतीत की प्रासांगिकता राष्ट्र, समाज और मानव जीवन में निरन्तर बनी रहती है। इसी आशय से सुधी लेखकों के रचनात्मक सहयोग की सदैव आकांक्षा रहेगी।

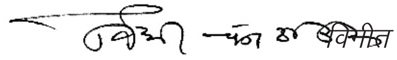

डॉ0 विद्या चन्द ठाकुर

काल ज्ञान

• ठा० राम सिंह

काल का अर्थ, उत्पत्ति एवं परिभाषा

भारतीय साहित्य में काल एक प्रत्यय है क्योंकि इसके बारे में विचार–विमर्श किया जा सकता है। व्याकरण के अनुसार यह शब्द गणनार्थक है अथवा प्रेरणार्थक है। यह कल् धातु के भाव अर्थ में "धञ्" प्रत्यय लगाने से बनता है।

वैदिक विद्वान निरुक्तकार यास्क इसे गत्यार्थक धातु से बना मानते हैं। इस से स्पष्ट होता है कि काल का संबंध गति से है। काल स्वयं चलता है और सभी को चलने की प्रेरणा देता है। काल और जगत एक साथ चलते हैं और इतिहास का आरंभ भी यहीं से होता है।

व्याकरण के महाभाष्यकार महर्षि पतंजलि के अनुसार काल वह है जो वस्तुओं का उपचय अथवा अपचय करता है अर्थात् जिस से वस्तुओं की वृद्धि अथवा संहार होता है। वह काल है। "वाक्यपदीय" में भर्तृहीर ने इसे "विभु" बतलाया है। विभु का अर्थ है सर्वव्यापक। "विश्व की काल यात्रा" नामक पुस्तक में लिखा है कि हिरण्यगर्भ के विस्फोटित विश्वद्रव्य से जब सृष्टि का चक्र शुरू हुआ तो सर्वप्रथम कालपुरुष (काल) की स्थापना हुई और लाखों वर्षों के बाद जब मनुष्य जीवन यापन करने की सभी साधनभूत आवश्यकताएँ पूर्ण हो गयीं तो मानवोत्पत्ति हुई और प्रकृति का विकास बंद हो गया।

वैसे प्रकृति में सभी प्राणियों के बीज मौजूद रहते हैं और समय आने पर जीवमान हो जाते हैं, परन्तु नानाविध शक्तिमयी प्रकृति महाकाल के संसर्ग से काल को उत्पन्न करती है। तत्पश्चात काल अपने से भिन्न पदार्थों को पैदा करता है।

महाकाल की उत्पत्ति

सृष्टि के पालक और संहारी काल जिस काल के द्वारा कलयित किये जाते हैं वही महाकाल है। यह काल परमेश्वर रूप होने के कारण अधेय, अनादि और अनन्त है।

काल की अवधारणा

काल सर्वव्यापक है। काल का अनुभव सभी प्राणियों को है। काल की सत्ता सब चराचर भूतों पर प्रभावी है। काल सर्वोपरि है। सभी काल की सत्ता के अधीन हैं। काल की कृपा का नाम आयु है और कोप मृत्यु है। काल अथ और इति से परे है। अग्नि, वायु और प्रकृति सभी दूसरी

शक्तियां काल के अधीन हैं।

काल की अद्भुत महिमा को देख कर इतिहास के आदि युग—देवयुग में महर्षि भृगु ने काल के संबंध में जो गीत गाया है वह निम्नलिखित है :—

"काल अपार है। काल की शक्ति अनन्त है। काल सब को देखता है। वह सहस्र आँखों वाला है। सभी काल के रथ पर बैठे हैं। ज्ञानी इस अश्व पर सवार होते हैं। मूर्खों पर यह स्वयं सवार होता है। ये लोक इस अद्भुत रथ के पहियों के साथ घूमते हैं। इस रथ की धुरि में अमृत है तभी तो वह कभी रुकने या थम जाने का नाम नहीं लेता है। काल लोकरूपी पहियों को आगे धकेलता है। काल पहला देव है। काल के सिर पर एक पूर्ण कुंभ रखा हुआ है। यह घड़ा अनेक रूप धरता है। इस सूर्यरूपी घट में ही केवल काल, मनमोहक यौवन और शुष्क जरा के अनेकरूप देखने में आते हैं। वह काल सब से ऊँचे लोक में है।

काल ने ही रीते भवनों को जीवन से भर दिया है, काल ने रंग बिरंगे जीवन को एक जगह इकट्ठा कर दिया है। पितररूप में जो काल था वह पुत्ररूप में बन गया। काल के परे कुछ भी नहीं है। काल ने द्युलोक को बनाया, काल ने ही पृथ्वी को उत्पन्न किया। भूत भविष्य की हलचल काल में आश्रित है। सब का होना काल के अधीन है। सूर्य का तपना काल के आधार पर है। काल सूर्य को छोड़ दे तो सूर्य भी जीवन सुधा भूल जाता है। सब पदार्थ काल के बल पर टिके हैं। आँख जो रात दिन देखती है वह काल का ही पसारा है।

हमारा मन, प्राण और नाम सब काल के साथ टंका हुआ है। काल के वरदान को पास आया जानकर सब लोक आनन्द से नाच उठते हैं। तप और ब्रह्मशक्ति काल में है। प्रजापति औरों के पिता हैं। प्रजापति का पिता काल है। काल सब पर ईश्वर है। काल ने ब्रह्माण्ड को प्रेरणा दी। काल से उसमें हलचल है। काल ब्रह्म की शक्ति बन कर प्रजापति को संभालता है। काल ने प्रजाओं को बनाया और उनसे भी पहले प्रजापति को बनाया। स्वयंम्भू कश्यप काल से बने और काल ने ही तप को पैदा किया।

जल काल से उत्पन्न हुआ। काल से दिशायें निकलीं। काल पाकर सूर्य आकाश में ऊँचे उठते हैं और काल की गति से फिर नीचे डूब जाते हैं। काल पाकर ही बड़ी बड़ी आंधियाँ उठती हैं। वायु प्रदेश की सफाई करती चली जाती हैं। काल के मंगल से पृथ्वी औषध, वनस्पतियों की बढ़ती को पाती है। काल की कृपा से द्युलोक मेघों को गर्भ में भर कर महान बनता है।

विधाता के मन्त्र ने काल में पहले भूत और भविष्य को रख कर देख लिया। ऋक, यजु और साम का त्रिविध चक्र काल से फैला। काल ने यज्ञ के सनातन ताने—बाने को फैलाया। उसी ने गन्धर्व और अप्सराओं के नाना भान्ति के घोड़ों (चन्द्र, नक्षत्र, इन्द्रिय आदि) को बनाया। काल पर ही सब लोक प्रतिष्ठत हुए। अथर्वा और अंगिरा (प्राण और मन) काल पर रुके हुए हैं। यह लोक और परलोक, सब पवित्र विधान, व्रत और मर्यादा में काल की कीली पर टिके हुए हैं। काल सब को वश में रखता हुआ ब्रह्म की शक्ति से घूमता है। काल परम देव है।

"इन मन्त्रों में काल से संबंध रखने वाले अनेक दार्शनिक सिद्धान्तों का समावेश पाया जाता है। काल की प्रकट और गुप्त अचिंत्य महिमा को इतने ओजस्वी शब्दों में वर्णन करने वाले ये शब्द विश्व के साहित्य में बेजोड़ हैं।" (वासुदेव शरण अग्रवाल)

सृष्टि रचना

स्थिति और गति दोनों काल पर आधारित है। काल ने सब प्राणियों की उत्पत्ति में प्रमुख भाग लिया है। जब तक देश के साथ काल न मिले तब तक सृष्टि का ढांचा तैयार नहीं होता है। दार्शनिक देश और काल के मिलने को सृष्टि का मूल कारण मानते हैं। देश स्थिति है काल उसको गति या धक्का देता है।

संसार का अर्थ है जो चले। संसार का अस्तित्व काल पर आधारित है। जगत का भी शब्दार्थ वही है – "गच्छति इति जगत:" जो जाता है वह जगत है। काल के बिना जाना नहीं हो सकता है। एक वस्तु का दूसरे स्थान पर चले जाना भर गमन क्रिया है। इसके पीछे की प्रेरक शक्ति काल ही है।

परिपूर्ण सत्य

सत्य अधूरा नहीं होता है। वह ९९ प्रतिशत भी नहीं होता। एक प्रतिशत कम होने से वह असत्य बन जाता है। सत्य शत प्रतिशत है। पश्चिम के वैज्ञानिक काल की सर्वव्यापकता एवं प्रभुता को समझ नहीं सके। वह टाईम और काल को समान समझते हैं। परंतु टाईम एक खंड है। काल अखंड है। टाईम शुरू होता है और समाप्त होता है। काल सदा से है और सदा रहेगा। भारतीय चिंतन परम्परा में काल समय नहीं वह तत्वात्मक है। हमारे भारतीय ऋषियों ने काल को देखा, उसका अध्ययन, विश्लेषण और संष्लेषण किया, परंतु वे यहीं पे नहीं रुके। उन्होंने काल का साक्षात्कार किया और योग के माध्यम से वे जन्म और मृत्यु से भी आगे छलांग लगाने में सफल हो गये। वास्तव में काल परिपूर्ण सत्य है अर्थात् पूर्ण ज्योति।

काल अविभाज्य है

काल अखंड और परिपूर्ण सत्य होने के कारण अविभाज्य है। परंतु फिर भी काल को भूत, वर्तमान और भविष्य में विभक्त करने की बात चली। सांसारिक हिसाब किताब में भूतकाल केवल घटनाओं की याद या स्मृति होता है और भविष्य होता है योजना या आकांक्षा। इस प्रकार याद या स्मृति और आकांक्षा की शून्यता ही वर्तमान है।

अद्वैत

भारतीय ऋषि मुनि काल की गति के जानकार थे। वे जानते थे कि ब्रह्म एक है, परंतु सन्देह न हो इस कारण उसे अद्वैत कहा अर्थात् एक है दो नहीं। सृष्टि का प्रत्येक कण काल के क्षण – क्षण से एकात्म है। इसलिये हिन्दू ऋषियों ने हजारों वर्ष पूर्व चन्द्र ग्रहण और सूर्य ग्रहण की तिथियों को जानने की चमत्कारिक योग्यता प्राप्त कर ली थी।

सांसारिक जीवन में सुख और दु:ख का चक्र चलता रहता है। गहन दु:ख और अवसाद का एक घंटा गहन सुख आनंद के ९० घंटों से भी अधिक बड़ा होता है। वास्तव में दु:ख कालावध है। आनन्द का अर्थ है काल शून्यता का बोध। स्मृतियाँ और आकांक्षायें मनुष्य को काल के अधीन करती हैं। (भूत—भविष्य) दोनों का अभाव अर्थात शून्यता व्यक्ति के चित को काल के बाहर ले जाती है। काल के बाहर हो जाने के विज्ञान का नाम "योग" है। काल के बाहर हो जाने की चित्त दशा का नाम "समाधि" है।

पाश्चात्य जगत के लोगों को "समाधि" का अनुभव नहीं हो पाया। योग उनके लिये केवल व्यायाम है और इसी कारण वह योगा बना। समाधि की जानकारी के चलते भारत में ऐसे महान योगी हुए जिन्होंने काल को खूंटी पर बांध दिया।

काल के दो रूप — मूर्त एवं अमूर्त

एक तो वह काल है जो हमें परमाणु, अणु, त्रुटि, निमेष, लव और युग के रूप में अनुभव में आता है, मूर्तकाल है। घड़ी की सूई से बनने वाला मिनटों और घन्टों वाला मूर्तकाल प्रगति का फल है। इनके पीछे की प्रेरणा देनेवाली जो शक्ति है वह अव्यक्त अथवा अमूर्त है। काल का जो मूर्तरूप है वह सृष्टि की प्रेरणा करता हुआ भी सृष्टि का मूल कारण नहीं हो सकता। सृष्टि का असली कारण वास्तव में ब्रह्म की अचिन्त्य शक्ति है। श्वेताश्वरत् उपनिषद् में सृष्टि के कारण की खोज में एक कारण काल को भी बताया है। वास्तव में जो काल ब्रह्म शक्ति का ही दूसरा नाम है जो सब देवों और सब भूतों के पीछे है वही अमूर्त शक्ति सृष्टि का बीज है। इसी काल को लक्ष्य करते हुए इसे अथर्ववेद में परम देव कहा है। भारतीय दार्शनिक परिभाषा में काल और ब्रह्म पर्यायवाची हो जाते हैं।

अमूर्त काल के अवयव

अमूर्त काल के अवयवों की जानकारी सूर्य के द्वारा मिलती है। लव, निमेष से युग पर्यन्त काल सूर्य पर आधारित है। यह काल का शुक्ल पक्ष है। काल का जो एक रस, अखंड रूप है उसमें मास, ऋतु और संवत्सर के चिन्ह नहीं हैं। हमारे सामने जो काल का प्रचार है उस पर कोई किसी भी प्रकार का पक्का निशान नहीं है। काल के हिसाब—किताब की कल्पना अमूर्तकाल की दृष्टि से माया है। अमूर्त काल को मूर्तकाल की तुलना में कृष्ण कहा गया है। सूर्य मूर्त काल का प्रतीक है। उस के विपरीत जो एक रस अविभाज्य, अखंड काल है वह कृष्ण रूप होने के कारण कागभुशुण्डि कहा गया है। कागभुशुण्डि अमर है। मृत्यु उनको छू नहीं सकती। जब तक सृष्टि है तभी तक सूर्य और मूर्त काल है।

अहोरात्रवाद

काल के ऊपर कहे गये दो रूपों की दार्शनिक छानबीन करने का प्राचीन नाम अहोरात्रवाद है। ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में कहा गया है कि सृष्टि के पहले दिन और रात का

विलगाव नहीं था। रात और दिन एक जोड़ा है। वास्तव में जगत द्विधाबद्ध है। यथा दिन सृष्टि है। रात प्रलय है। दिन प्रकाश है। रात अन्धकार। दिन शुक्ल भाव है और रात कृष्ण भाव। दिन स्थिति है, रात विघटन। दिन ज्ञान है, रात अज्ञान ब्रह्माण्ड में जब तक सूर्य जैसे संचित शक्ति केन्द्र है तब तक सृष्टि और मूर्त काल है। जब शक्ति के अद्य: प्रवाह से उसके संचित केंद्र विलीन हो जायेंगे और शक्ति समान रूप से फैल जायेगी तब सृष्टि समाप्त हो जायेगी। वही कृष्ण काल का प्रलय है। ब्रह्म की अचिंत्य शक्ति के द्वारा फिर सृष्टि रचना होगी। यह सृष्टि चक्र अनादि से चलता आया है और आगे भी चलता रहेगा।

संकल्प

हमारा प्रचलित संकल्प सूत्ररूप में काल का परिचय देता है। इसमें पांच विषय आते हैं :— किस स्थान में, किस काल में, कौन व्यक्ति, किस काम को, किस उद्देश्य से करना चाहता है। यही संकल्प का पाठ है।

भारतीय कालगणना के अनुसार मूर्तकाल के प्रारंभिक सूक्ष्म अवयव — 'परमाणु, अणु, त्रस्रेणु, त्रुटि, वेध, लव, निमेष, क्षण, काष्ठा, लघु नाड़िका ये १२ हैं। आगे काल के परिमाप दिन, पक्ष, मास, अयन, वर्ष, युग (७), महायुग, मन्वन्तर, कल्प, ब्रह्मा, महाकल्प तक कुल मिलाकर २९ अवयव हैं।

व्यक्त काल के इन भेदों का काल (अमूर्त काल) की अनन्तता के साथ जो संबंध है उसे पुराणकारों ने लोमश ऋषि की कल्पना से स्पष्ट किया है। सृष्टि ब्रह्मा का एक दिन है और प्रलय एक रात्रि है। ऐसे दिन और रात्रि को जोड़ कर जब ब्रह्मा की आयु के १०० वर्ष हो जाते हैं तो यह ब्रह्मा की एक आयु है। लोमश ब्रह्मा का पुत्र है। ब्रह्मा की एक आयु लोमश की आयु का एक दिन है। इसका अर्थ है कि लोमश को अपने पिता का प्रत्येक दिन श्राद्ध करना पड़ेगा। परंतु लोमश अपने सिर का पूरा क्षोर नकारकर अपने सिर का एक रोम उखाड़कर फैंक देता है। इसका अर्थ है कि लोमश के एक —एक रोम में ब्रह्मा की एक—एक आयु के बराबर काल की सत्ता बनाई है। लोमश के नाम से पता चलता है कि उनके रोम रोम में काल का अनन्त परिमाण भरा हुआ है। लोमश के शरीर के रोमों की गणना करने में कौन समर्थ है ?

लोमश की आयु में कितनी सृष्टियां और प्रलय पार हो जाते हैं। अनन्त काल को कौंन नाप सकता है, गणित के अंकों की कल्पना करने में बुद्धि चकराने लगती है। मेटरलिंक के शब्दों में "काल और देश, जीवन और चैतन्य, अनन्तता और नित्यता में अगम्य रहस्य हैं।"

सन्दर्भ पुस्तकें :—

विश्व की काल यात्रा, भारतीय वैज्ञानिक और वैश्विक कालगणना, विश्व संवाद पत्रिका — लखनऊ का काल गणना विशेषांक।

महर्षि व्यास

●स्व. डा० वासुदेव शरण अग्रवाल

व्यास भारतीय ज्ञान गंगा के भगीरथ हैं। जिस प्रकार इस देव–निर्मित देश को किसी पुरायुग में भगीरथ ने अपने उग्र तप से गंगावतरण के द्वारा पवित्र किया था, उसी प्रकार महर्षि वेदव्यास ने भारतीय लोक–साहित्य के आदि युग में हिमालय के बदरिकाश्रम में अखंड समाधि लगाकर अध्यात्म, धर्मनीति और पुराण की त्रिपथगा गंगा का पहले अपनी आत्मा में साक्षात्कार किया और फिर साहित्यिक साधना के द्वारा देश के आर्य वाङ्मय को उससे पवित्र किया। ज्ञानरूपी हिमवान् के उच्च शिखरों पर बहने वाले दिव्य जलों को मानों वेदव्यास भूतल पर ले आए। उन्होंने लोक साहित्य को वेग की प्रेरणा दी। उनके द्वारा पूर्वजों के ज्ञान और चरित्रों से गुम्फित सरस्वती लोक के कंठ में आ विराजी।

जिस प्रकार भारतवर्ष की प्राकृतिक सम्पदा का अपरिमित विस्तार है, उसी प्रकार कालक्रम से वेदव्यास की साहित्यिक सृष्टि भी लोक के देश व्यापी जीवन में अनन्त बन कर समा गयी है। एक प्रकार से सारे राष्ट्र का जीवन ही आज व्यास रूपी महान वट वृक्ष की छाया के आश्रय में आ गया है। व्यास भारतवर्षीय ज्ञान के सर्वोत्तम प्रतिनिधि बन गए हैं। यदि भारतीय ज्ञान की उपमा एक ऐसे रत्न से दी जाए जिसकी चमक के सहस्त्रों पहलू हों, तो व्यास की शत साहस्त्री संहिता पूरी तरह से उस महार्घ मणि का स्थान ले सकती है। जैसे भगवान समुद्र और हिमवान् गिरि दोनों रत्नों की खान है, वैसे ही ' भारत ' भी रत्नों से परिपूर्ण है।' व्यास की प्रतिभा की स्तुति में इससे अधिक और क्या हो सकता था...

धर्मे चार्थे कामे च मोक्षे च भरतर्षभ ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित् ।।

(आदि पर्व ५६,३३)

अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नामक जीवन के चार पुरुषार्थों से संबंध रखने वाला जो ज्ञान महाभारत में है, वही दूसरी जगह है, जो यहाँ नहीं है वह कहीं और भी न मिलेगा।

जीवन चरित्र

पुराविदों के प्रयत्न करने पर भी व्यास हमारे ऐतिहासिक तिथिक्रम के अन्तर्गत पूरी तरह नहीं बांधे जा सके। विक्रम से तीस शताब्दी पूर्व से लेकर पन्द्रह शताब्दी पूर्व तक के किसी युग में हमारे व्यास का उदय हुआ। पुराणों के अनुसार ब्रह्मा से लेकर कृष्ण द्वैपायन तक अट्ठाईस

व्यासों की परम्परा मिलती हैं। ये मुख्यतः पुराणों के प्रवचन कर्ता रहे होंगे। पर जब तक सब पुराणों के सुसमीक्षित संस्करण तैयार न हो जाएँ तब तक इस अनुश्रुति का पूरा मूल्य नहीं आंका जा सकता। हाँ, जय नामक उत्तम इतिहास के रचने वाले अमितौजा महामुनि व्यास, जिनका नाम अट्ठाईस व्यासों के अन्त में आता है, अवश्य ही हमारे चिरपरिचित वे पुराण मुनि हैं जो कुरुपांडव युग में इस पृथ्वी पर बदरिकाश्रम और हस्तिनापुर के बीच आते जाते थे। हिमालय के रम्य शिखर पर जहां नर–नारायण दो पर्वत हैं, वहाँ भगीरथी के समीप विशाला बदरी नामक स्थान पर व्यास ने अपना आश्रम बनाया था। आज भी बदरी नारायण के इस प्रदेश के दर्शन के लिए प्रति वर्ष सहस्रों यात्री जाते हैं। विशाला बदरी के समीप ही आकाश गंगा है। जहाँ व्यास का चंक्रमण (घूमने का) स्थान था। यह स्थान हरिद्वार से लगभग एक मास की पैदल यात्रा के बाद आता था। उसी हिमवत पृष्ठ पर व्यास का आश्रम था, जिसके कण–कण में दिव्य तप की भावना ओत–प्रोत थी। वहाँ व्यास ने चार प्रमुख शिष्यों को वैदिक संहिताओं का अध्ययन करवाया। पैल ने ऋग्वेद, वैशम्पायन ने यजुर्वेद, जैमिनी ने सामवेद और सुमन्तु ने अथर्ववेद की संहिताओं का पारायण किया। कहा जाता है कि स्वयं व्यास ने अत्यधिक परिश्रम से वैदिक मंत्रों का वर्गीकरण करके चार संहिताओं का विभाग किया, और इस साहित्यिक साधना के कारण ही उनका नाम वेदव्यास प्रसिद्ध हुआ।[१] इसी आश्रम में कुरु–पांडवों के युद्ध की समाप्ति पर व्यास जी ने तीन वर्षों के सतत उत्थान के बाद महाभारत नामक श्रेष्ठ इतिहास की रचना की है–

त्रिभिर्वर्षैः सदोत्थायी कृष्णद्वैपायनो मुनिः।
महाभारतमाख्यानं कृतवानिदमुत्तमम् ॥

(आदि पर्व ५६,३२)

यह महाभारत पाँचवाँ वेद कहलाता है और इसे व्यास ने अपने पांचवे शिष्य रोमहर्षण को पढ़ाया था। इस का एक नाम कार्ष्ण वेद भी है। वस्तुतः व्यास का जन्म नाम कृष्ण था। महाभारत की राजनीति के युग में दो कृष्ण प्रसिद्ध हुए, एक वासुदेव कृष्ण और दूसरे द्वैपायन कृष्ण। यमुना नदी के एक द्वीप में जन्म होने के कारण ये द्वैपायन कहलाए। चेदि देश के राजा वसु उपरिचर के वीर्य से हस्तिनापुर के पास, जहाँ एक टापू था, सत्यवती का जन्म हुआ। जन्मकाल से ही जमुनातीरवासी दाशराज ने उसका पालन पोषण किया था। सत्यवती नामक यह कन्या यमुना के पास नाव चलाती हुई प्रथम यौवन के समय योगी पराशर मुनि के संयोग से व्यास की माता बनी। इसी सत्यवती के साथ आगे चलकर राजा शान्तनु ने विवाह किया। व्यास की माता सत्यवती गंगा पुत्र भीष्म की सौतेली माँ थी, अतएव व्यास और पितामह भीष्म का सम्बन्ध अत्यन्त निकट था। सत्यवती के पुत्र विचित्रवीर्य निस्सन्तान ही मृत्यु को प्राप्त हुए थे। उनके बाद कुरुकुल अनपत्यता के कारण डूबने लगा। तब अपनी माता सत्यवती का कहना मानकर व्यास ने विचित्रवीर्य की स्त्रियों से धृतराष्ट्र और पांडव नामक दो पुत्र पैदा किए। इसी

अवसर पर एक दासी के गर्भ से विदुर उत्पन्न हुए। आम्बिकेय धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन आदि कौरव और कौशल्या नन्दन पाण्डु के पुत्र युधिष्ठरादि पाँच पाण्डव हुए। व्यास जी ही इस वंश के बीज वपन करने वाले हुए। अतएव जन्मपर्यन्त हस्तिनापुर के राजनीतिक उतार–चढ़ाव के साथ उनका घनिष्ठ सम्बंध बना रहा। पुत्रों के जन्म के बाद व्यास ने हस्तिनापुर के पास सरस्वती नदी के किनारे भी एक आश्रम बना लिया था। वहाँ से वे हस्तिनापुर आते रहते थे। जिस समय पांडु की मृत्यु के बाद पांडव हस्तिनापुर आये और पांडु का दाह–संस्कार हुआ उस समय व्यास वहाँ मौजूद थे। व्यास ने माता सत्यवती को सलाह दी कि अब तुम हस्तिनापुर छोड़कर वन में जाकर योग में चित्त लगााओ। कौरव–पांडवों की अस्त्र परीक्षा के समय भी व्यास हस्तिनापुर में थे। उन्होंने बनवास के समय एकचक्रा नगरी में पांडवों से भेंट करके उन्हें द्रोपदी के स्वयंवर में सम्मिलित होने की सलाह दी। व्यास जी का अमोघ मंत्र गाढ़े समय में सदा पांडवों के साथ रहा। व्याह के पश्चात् जब पांडवों को राज मिला तब भी राजसूय यज्ञ की सूझ व्यासजी से ही उनको प्राप्ति हुई। इस यज्ञ में आपसी डाह के ऐसे बानक बने जिनसे आगे युद्ध अवश्यम्भावी जँचने लगा। व्यास जी युधिष्ठिर को क्षत्रियों के भावी विनाश की सूचना देकर स्वयं कैलाश पर्वत की यात्रा पर चले गये।[३] इधर पांडवों ने जुए में हार कर फिर वन की राह ली। व्यास जी को जब यह समाचार मालूम हुआ तब उन्होंने आकर धृतराष्ट्र को समझाया कि पांडवों के साथ न्याय करें और स्वयं द्वैतवन में जाकर पांडवों से मिले। वहाँ उन्होंने युधिष्ठिर को प्रतिस्मृति नामक सिद्ध विद्या दी और उन्हें दूसरी जगह जाकर रहने की सम्मति दी। पांडव द्वैतवन को छोड़कर सरस्वती के किनारे काम्यकवन में रहने लगे।

उनके वनवास के बारह वर्ष समाप्त हो रहे थे। व्यास जी फिर उनके पास पहुँचे और युधिष्ठिर को नीतिमार्ग और आत्मसंयम के धर्म का उपदेश देकर अपने आश्रम में चले गये। तेरहवें वर्ष के बाद जब युधिष्ठिर ने अपना राज्य वापस मांगा तब व्यास ने फिर धृतराष्ट्र को समझाया। परन्तु काल के सामने बूढ़े और अन्धे राजा धृतराष्ट्र तथा मनीषी वेदव्यास का एक भी उपाय सफल न हुआ। व्यास अपने ज्ञान चक्षु से काल की महिमा जानते थे। काल की दुर्धर्ष सत्ता में विश्वास उनके दर्शन का अभिन्न अंग था जिसे उन्होंने कई जगह महाभारत में प्रकट किया...

कालमूलमिदं सर्व जगद्बीजं धनंजय।
काल एव समादत्ते पुनरेव यदृच्छया।
स एव बलवान भूत्वा पुनर्भवति दुर्बलः।

(मौसल पर्व ८, ३३,३४)

काल सब की जड़ है, काल संसार के उत्थान का बीज है। काल ही अपने वश में करके उसे हड़प लेता है। कभी काल बली रहता है, कभी वही निर्बल हो जाता है। समन्तपंचक के सर्व क्षत्रियों का क्षय करने वाले युद्ध को अपनी आंखों से देख कर वेदव्यास ने काल की महिमा के

ध्यान से ही अपने चित्त को धैर्य दिया। जिस समय कुरुक्षेत्र में दोनों ओर से भारतीय सेनाएं आ डटीं तब भी व्यास जी ने धृतराष्ट्र को समझा कर युद्ध रोकना चाहा। पर उनकी एक न चली। युद्ध के दिनों में भी वह जब तब अपने मंत्र से स्थिति को संभालते रहे और युद्ध के अन्त में शोकमना धृतराष्ट्र को और युधिष्ठिर को समझा बुझा कर धैर्य बंधाया। युधिष्ठिर को राज्य के लिए तैयार करके नीति, धर्म और अध्यात्म की शिक्षा के लिए भीष्म के पास भेजा और अश्वमेध करने की प्रेरणा की। युद्ध के सोलह वर्ष बाद वह धृतराष्ट्र से फिर हिमालय में जाकर मिले और तप करने की सलाह देकर अपने आश्रम को चले गए। जब सरस्वती नदी के तीर पर बसने वाले आभीर गणों (हरियाणे के दस्युओं) ने वृष्णि वंश की स्त्रियों को अर्जुन के देखते–देखते लूट लिया, तब शोक और अपमान से भग्नहृदय अर्जुन अन्तिम बार व्यास के दर्शन को गए। व्यास ने उन्हें कालचक्र के उत्थान और पतन का उपदेश देकर विदा किया। घटनाओं के झंझावात में भी क्षोभरहित स्थिति के प्रतीक वेदव्यास हैं।

ग्रन्थ परिचय

व्यास को वेदान्तसूत्रों का कर्ता माना जाता है। वेदान्तसूत्रों का नाम भिक्षुसूत्र भी है। पाणिनि की अष्टाध्यायी से विदित होता है कि भिक्षुसूत्र के रचयिता पाराशर्य थे। पराशर के पुत्र होने के कारण व्यास का ही एक नाम पाराशर्य था। बदरी आश्रम में रहने के कारण व्यास का दूसरा नाम बादरायण मुनि भी था और इसी कारण कभी–कभी वेदान्त सूत्रों को बादरायणसूत्र की कहते हैं। पाणिनि के शास्त्र में जो ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होती है उसको प्रामाणिक मानते हुए यह विश्वास करने के लिए पर्याप्त हेतु है कि वेदान्तसूत्रों की रचना वेदव्यास ने ही की हो। वेदान्तसूत्र उपनिषदों के अध्यात्म ज्ञान का निचोड़ है।। कहा जाता है कि वेदव्यास ने अपने पुत्र शुक को मोक्षशास्त्र का अध्ययन कराया था। सम्भव है, बादरायण सूत्रों की रचना में यही हेतु रहा हो। परन्तु जो ग्रंथराट् व्यास की कीर्ति का शुभ्र जयस्तम्भ है वह महाभारत है। महाभारत में व्यास ने अपनी अमित बुद्धि से अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र और मोक्ष को भारतीय कथा के साथ–साथ बड़े सुन्दर ढ़ंग से सजा कर सदा के लिए आर्य जाति के विस्तृत ज्ञान और लौकिक जीवन का रूप खड़ा कर दिया था।

अर्थशास्त्रमिदं पुण्यं धर्मशास्त्रमिदं परम्।
मोक्षशास्त्रमिदं प्रोक्तं व्यासेनामित बुद्धिना।।

(आदि पर्व ५६ / २१)

महाभारत सच्चे अर्थों में प्रचीन भारतवर्ष का विश्वकोष है। संसार के साहित्य में महाभारत एक दिग्गज ग्रंथ है। इसकी तुलना में यूनान के इलियड और ओडेसी अथवा आइसलैंड और स्कैंडिनेविया के प्राचीन एड्डा और सागा, जिमें उत्तराखंड का अवशेष बचा गाथा शास्त्र[४] सुरक्षित है, बहुत पीछे छूट जाते हैं। महाभारत जहाँ एक ओर प्राचीन नीति और धर्म का

अक्षय भंडार है, वहीं दूसरी ओर इसमें भारतीय गाथाशास्त्र की भी अनन्त सामग्री है। महाभारत को वेदव्यास ने अतीत की घटनाओं के नीरस क्रोडपत्र के रूप में नहीं रचा, अन्यथा वह अब से कहीं पहले अन्य देशों के भारी भरकम ऐतिहासिक पोथों की तरह धूलि—धूसरित हो गया होता। महाभारत एक जीते—जागते चित्रपट के रूप में सदा हमारे सामने रहा है, जिसके अर्थ का व्याख्यान अनगिनत सूत अपने—अपने आसनों से करते रहे हैं। आज भी व्यासगद्दी का उत्तराधिकार भारत के साहित्यिक जगत् में अक्षुण्ण बना हुआ है। आकाश में उड़ने वाले ज्ञान को पृथिवी के मानव की पहुँच में किस तरह लाया जा सकता है, इस प्रश्न का समाधान भारतवर्षीय व्यासगद्दी है। पश्चिम को यह शिकायत है कि उसका नया ज्ञान विशेषज्ञों के हाथ में पड़ कर लोक से दूर जा पड़ा हैं। जीवन—मरण एवं सृष्टि और प्रलय के सम्बन्ध में जो विज्ञान के संशोधन हैं उनको जन साधारण के जीवन में ढालने के साधन का विज्ञान के पास अभाव है। परन्तु भारतवर्ष में सार्वजनिक शिक्षा के चमत्कारी विधानों में व्यासगद्दी से कही जाने वाली कथाओं के द्वारा विशेषज्ञ और लोक के बीच की खाई पर पुल बनाने का सफल प्रयास होता आया है। इसी कारण रामायण, महाभारत और पुराणों के महान् चरित्रों की अमर कथाएँ देश के कोने—कोने में फैली हुई हैं। अपने पूर्वपुरुषों के चरित्रों को सुनने को जो हमारे मन में स्वाभाविक उमंग है, वही हमारा सबसे उत्कट इतिहास प्रेम है। जनमेजय के शब्दों में हम कह सकते हैं—

'पूर्वपुरुषों के महान् चरित्र को सुनते—सुनते मैं कभी तृप्त नहीं होता।'[६] उस स्वाभाविक कौतुक को तृप्त करने का राष्ट्रीय साधन महाभारत ग्रन्थ था। पराक्रमी द्रोण, भीष्म, अर्जुन, भीम, कर्ण और दुर्योधन के महावीर्य भुजदंडों की शक्ति का ओज जो वेद व्यास ने अपने श्लोकों में भरा है, उससे अब भी हमारा वीर हृदय उछलने लगता है।

भारत महाभारत

महाभारत को शत साहस्त्री संहिता कहा गया है। हरिवंश को मिला कर महाभारत के १८ पर्वों में एक लाख श्लोक होने का अनुमान किया जाता है। पर यह निश्चय है कि वेदव्यास के समय में इस ग्रंथ का यह बृहत् रूप न था। पाणिनि की अष्टाध्यायी के एक सूत्र (६/२/३८) में महाभारत नाम आता है। उससे पहले आश्वलायन गृह्यसूत्र में भारत और महाभारत दानों का एक ही वाक्य में अलग—अलग उल्लेख है। वास्तविक कुरु पांडवों का वीरगाथा ग्रंथ भारत ही था, जिसमें चौबीस हजार श्लोक थे और इस कारण जिसका नाक 'चतुर्विंशति साहस्त्री भारत संहिता' प्रसिद्ध था। इसकी अन्तःसाक्षी स्वयं महाभारत में मौजूद है—

चतुर्विंशति साहस्त्री चक्रे भारतसंहिताम्।
उपाख्यानैर्विना तावद् भारतं प्रोच्यते बुधैः।।

(आदि० १/६१)

व्यास का मूल भारत बिना उपाख्यानों के था पर वर्तमान ग्रंथ में सैकड़ों उपाख्यान यथा

स्थान पिरो दिये गए हैं। व्यास ने तीन वर्ष के सतत परिश्रम (उत्थान) से २४००० श्लोकों में भरतवंश के इतिहास और युद्ध का मूल काव्य रचा। उसको रामहर्षण सूत ने यथावत् पढ़ा। पुन: व्यासशिष्य वैशम्पायन ने जनमेजय के यज्ञ में उसका पारायण किया। इस समय तक ग्रंथ का रूप शुद्ध बना रहा। महाभारत का तीसरा संस्करण भार्गववंशी कुलपति शौनक के बारह वर्षों के यज्ञ में देखने में आता है। यहाँ वक्ता और श्रोता दोनों नैमिषारण्य की सघन छाया में शान्ति के साथ पर्याप्त अवकाश लेकर बैठे थे। इस समय भारत का उपबृहण महाभारत के रूप में हो चुका था, चतुर्विंशति साहस्त्री संहिता बढ़कर शतशाहस्त्री बन गई थी।

उसमें ययाति[६] और परशुराम जैसे बड़े—बड़े उपाख्यान स्वच्छन्दता से मिला लिए गए। बहुत सी कथाएँ, जिन्हें हम बौद्ध जातकों तक में पाते हैं, लोक की चलती फिरती संपत्ति थी, वे भी महाभारत में मिला ली गयीं। अनुशासन पर्व की पुष्करहरण की कथा (अ० ६३/९४) और मिसजातक (सं० ४८८) एक ही हैं। अनागत विधाता आदि तीन मछलियों की कहानी या राजा ब्रह्मदत्त और पूजनी चिड़िया की बाल कहानियाँ भी महाभारत के भीतर आ गईं। इसके अतिरिक्त शिव, विष्णु, सूर्य, देवी और गणपति की बढ़ती हुई भक्ति के आवेश में सम्प्रदायविदों ने महाभारत को अपनी कृपा का लक्ष्य बनाया। परन्तु इन सबसे बढ़कर अध्यात्म, धर्म और नीति के अनेक संवाद महाभारत में समय—समय पर मिलते गये। इन सब सम्मिश्रणों के कारण मूलग्रंथ का कायापलट हो गया। कुछ समय तक तो भारत और महाभारत का अस्तित्व अलग—अलग पहचानने में आता रहा, परंतु जैसा स्वाभाविक था, आगे चल कर केवल महाभारत ही आर्य संस्कृति के सबसे महान् ज्ञान—विज्ञान कोष के रूप में रह गया।

पूना संस्करण

प्रश्न यह है कि क्या फिर भारत ग्रंथ को महाभारत में से अलग किया जा सकता है। क्या यह संभव है कि महाभारत के भीतर कालक्रम से जमी हुई विभिन्न साहित्यिक तहों को फिर से उलट कर हम कुछ उस पर्दे को हटा सकें जिसके पीछे नवीन ने प्राचीन भाग को छिपा रक्खा है। यह प्रश्न हमारे राष्ट्रीय पांडित्य की कसौटी है। हर्ष की बात है कि यह भगीरथ कार्य पूना के 'भांडारकर प्राच्य विद्या संस्थान' द्वारा हो रहा है। महाभारत के इस संस्करण में जहाँ तक मानवी बुद्धि और परिश्रम के लिए सम्भव है, वहाँ तक महाभारत के उस मूल रूप का, यथासम्भव प्राचीनतम रूप का उद्धार करने का प्रयत्न किया गया है।

डॉ० सुकथनकर इस कार्य के प्राण थे। इस दिशा में उनका 'भृगृ और भारत'[७] शीर्षक बृहत् निबन्ध स्तुत्य है। उससे यह ज्ञात होता है कि भृगुवंशी ब्राह्मणों के द्वारा किए गए संपादन के फलस्वरूप शताब्दियों में भारत को महाभारत का स्वरूप प्राप्त हुआ होगा। कुलपति शौनक स्वयं भार्गव थे। भारतवंश से भी पहले उनकी जिज्ञासा भार्गववंश की कथा के लिए प्रकट होती है—

तत्र वंश अहं पूर्व श्रोतुमिच्छामि भार्गवम्।

भार्गव शौनक का यह पक्षपात समग्र ग्रंथ पर पड़े हुए भार्गव प्रभाव का द्योतक है। और्वोपाख्यान (आदि), कार्तवीर्योपाख्यान(वन),अम्बोपाख्यान (उद्योग) विपुलोपाख्यान(शान्ति), उत्तंकोपाख्यान (अश्वमेध) का सम्बन्ध भार्गवों से है। आदि पर्व के पहले ५३ अध्याय, जिनमें पौलोम और पौष्य पर्व हैं, भार्गव कथाओं से सम्बन्ध रखते हैं। भरतवंश की कथा उसके बाद चली है। शांति और अनुशासन पर्वों में जो धर्म और नीतिपरक अंश है, वे भी भृगुओं की प्रेरणा के फल हैं। यह सत्य है कि मूल भारतसंहिता के उस शुद्ध रूप का जिसमें उसका आविर्भाव हिमवत् पृष्ठ के बदरी वन में हुआ था, इस समय ठीक–ठीक उद्धार करने का दावा कोई नहीं कर सकता, फिर भी सहस्रों वर्षों की जमी हुई काई को हटाकर जितना भी परिष्कार किया जा सके श्रेयस्कर है। इस दृष्टि से पूना के भारत चिन्तकों का कार्य राष्ट्रीय महत्त्व का है। महामति पुराणज्ञ डॉ० सुकथनकर इस कार्य में हमारे अर्वाचीन उग्रश्रवा हुए।

साहित्यिक महत्त्व

महाभारत संस्कृत साहित्य का धुरंधर ग्रंथ है। उसका साहित्यिक तेज सर्वातिशायी है, 'एड्डा' और 'सागाओं' के लिए प्रख्यात लेखक कारलाइल ने लिखा है कि वे इतनी महान् कृतियाँ हैं कि उन्हें किंचित स्वरूप कर देने पर शेक्सपियर, दांते ओर गेटे बन सकते हैं, यही बात हम महाभारत के लिए कह सकते हैं। भास, कालिदास, माघ, हर्ष की साहित्यिक कृतियाँ महाभारत के ही अल्प विषयात्मक रूप हैं। वैसे भी महाभारत साहित्यिक शैलियों की खान है। उपाख्यान शैली, गल्प शैली दर्शन और अध्यात्म निरूपण की संवादात्मक शैली, प्रश्नोत्तर शैली (युधिष्ठिर–अजगर और युधिष्ठिर–यक्ष प्रश्न, वनपर्व अ० १८०,८१, अ० ३१३), केवल प्रश्नात्मक शैली (सभा पर्व अ०५, नारद प्रश्न मुख से राजधर्मानुशासन), नीति ग्रन्थात्मक शैली (विदुरनीति, उद्योग० अ० ३३,४०) स्तोत्र शैली, सहस्रनाम शैली इस प्रकार वर्तमान महाभारत में साहित्यिक पद्धति के अनेक बीज पाए जाते हैं।

व्यास और राष्ट्र

पर हमारे राष्ट्रीय अभ्युत्थान के लिए महाभारत का विशेष महत्त्व यह है कि वह प्राचीन भूगोल, समाजशास्त्र, शासन सम्बन्धी संस्था, नीति और धर्म के आदर्शों की खान है। वेद व्यास जिस भारत राष्ट्र की उपासना करते थे, भविष्य का हिन्दू उसका स्वप्न देखेगा, उनका निम्नलिखित राष्ट्रगीत हमारे इतिहास का सनातन मंगलाचरण होगा–

अत्र ते कीर्तयिष्यामि वर्ष भारत भारतम्।
प्रियमिन्द्रस्य देवस्य मनोर्वैवस्वतस्य च।
पृथोस्तु राजन्वैन्यस्य तथेक्ष्वाकोर्महात्मनः।

ऋषभस्य तथैलस्य नृगस्य नृपतेस्तथा।

कुशिकस्य च दुर्धर्ष गाधेश्चैव महात्मनः।

सोमकस्य च दुर्धर्ष दिलीपस्य तथैव च।

अन्येषां च महाराज क्षत्रियाणां बलीयसाम्।

सर्वेषामेव राजेन्द्र प्रियं भारत भारतम्।। [९]

आओ, हे भारत, अब मैं तुम्हें भारत देश का कीर्तिगान सुनाता हूँ। वह भारत, जो इन्द्रदेव को प्रिय है; जो मनु वैवस्वत, आदिराज पृथु, वैन्य और महात्मा इक्ष्वाकु को प्यारा था; जो भारत ययाति, अम्बरीष, नुहुष, मुचुकुन्द ओर औशीनर शिवि को प्रिय था; ऋषभ, ऐल और नृग जिस भारत को प्यार करते थे; और जो भारत कुशिक, गाधि, सोमक, दिलीप और अनेकानेक वीर्यशाली क्षत्रिय सम्राटों को प्यारा था, हे नरेंद्र, उस दिव्य देश की कीर्ति कथा मैं तुम्हें सुनाऊंगा।

व्यास ने राष्ट्रीय राजनीति का जो आदर्श रक्खा है वह मनु और वाल्मीकि से मिलता है। वाल्मीकि के 'अराजक जनपद' गीत से मिलता–जुलता व्यास का 'यदि राजा न पालयेत' (शान्ति० ६८/१,३०) गीत है। लोक में शान्ति की व्यवस्था राजा का सबसे प्रथम कर्तव्य है। धर्म की जड़ राजा की सुव्यवस्था के बल पर टिकी रहती है। यदि राजा न हो, तो दुष्ट साधुओं को खा डालें, धर्म डूब जाय। वेद कहीं के न रहें। सारी प्रजा अंधकार में विलीन हो जाए।[१०] राष्ट्र के धर्मबन्ध शासन की सुव्यव्स्था के अधीन हैं। व्यास के मत में बिना राजा का राष्ट्र मरा हुआ है।

मृतं राष्ट्रमराजकम् (वन० ३१३/८४)

अराजक राष्ट्र मात्स्य न्याय का शिकार हो जाता है। (शा० १६, १७)। व्यास ने राजा और क्षत्रिय की परिभाषा दी है। जो लोकरंजन करता है वही राजा है (शा० २९/१३८) है। इन्हीं आदर्शों को हमारे इतिहास के स्वर्णयुग में कालिदास ने दोहराया था।[११] भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा कि राजा ही काल को बनाता है, या काल राजा को बनाता है, इस में तुम कभी संशय मत करना। राजा ही काल को बनाता है–

कालो वा कारणं राज्ञो राजा वा कालकारणम्।

इति ते संशयो मा भूद्राजा कालस्य कारणम्।।

(शा० ६६/६)

'जब राजा भली प्रकार दंडनीति का पालन करता है। तभी सतयुग आ जाता है। राजा का आसन राष्ट्र का ककुद है। राजा की उस आदर्श आसन्दी की रक्षा में रह कर प्रजा जिस धर्म का पालन करती है उसका एक चतुर्थ अंश राजा को प्राप्त होता है। राजा को अपनी नीति में माली की तरह होना चाहिए, कोयला फूंकने वाले आंगारिक की तरह नहीं। एक फूलों की चाह

में वृक्षों को पोसता है, दूसरा अंगारों के लिए पेड़ों को फूँक डालता है। प्रजा राजा का शरीर हैं। अपने आप को बचाने के लिए भी राजा को प्रजा की रक्षा करनी चाहिए। प्रजा का भी सर्वोत्तम शरीर राजा ही है। राजा को पुष्ट करके वे अपने आपको बढ़ाती है। जो राष्ट्र की कामना करते हैं उनको सबसे पहले लोक की रक्षा करनी चाहिए। व्यास ने षोडश राजीय पर्व में प्राचीन आर्य राजाओं के आदर्श का स्मरण दिलाया है। राम के राज्य में समय पर मेघ बरसते थे और सदा सुभिक्ष रहता था। दिलीप के राज्य में स्वाध्याय घोष, टंकार घोष और दान संकल्प घोष, ये तीन शब्द बराबर सुनाई पड़ते थे। संक्षेप में वेद व्यास के मत अनुसार लोक का सारा जीवन धर्म के आश्रित है। राजधर्म बिगड़ गया तो वेद, धर्म, वर्ण, आश्रम, त्याग, तप, विद्या, सब कुछ नष्ट हुआ समझना चाहिए। (शान्ति पर्व ६३/२८,२९)—

मज्जेत् त्रयी दंडनीतौ हतायां सर्वे धर्माः प्रक्षयेयुर्विवृद्धाः।
सर्वे धर्माश्चाश्रमाणां हताः स्युः क्षात्रे त्यक्ते राजधर्मे पुराणे।।
सर्वे त्यागा राजधर्मेषु दृष्टाः सर्वाः दीक्षा राजधर्मेषु युक्ताः।
सर्वा विद्या राजधर्मेषु चोक्ताः सर्वे लोका राजधर्मे प्रविष्टाः।।

व्यास जी उस राजनीतिक नेता का अधिकार नहीं मानते जो स्वयं किसान का जीवन व्यतीत न करता हो—

न नः स समितिं गच्छेद् यश्च नो निर्वपेत्कृषिम् (उद्योग पर्व ३६/३१)

'वह हमारी समिति का सदस्य नहीं बन सकता जो स्वयं कृषि नहीं कर सकता। जो खेतिहर किसान नहीं है वह नेता धोखे का मल है; जो स्वयं हल की मुठिया नहीं पकड़ता वह कैसा नेता, कहाँ का नेता, किसका नेता? किसानों के देश के राजनीतिक जीवन की यही एक कसौटी हो सकती थी। उसे ही कई सहस्त्र वर्ष पूर्व व्यास जी ने लोक धर्म के निचोड़ की तरह पहचान लिया और इतने सरल शब्दों में कह डाला। यहाँ व्यास जी भारत के शाश्वत किसान की भाषा में बोल उठे हैं— जो स्वयं धरती— न जोते वह हमारी संसद् में बैठने योग्य नहीं ।'

व्यास और धर्म

व्यास ने जो धर्म का स्वरूप रक्खा है वह उनका सबसे महान् ऋषित्व का दर्शन है। वे धर्म को स्वर्ग प्राप्ति कराने वाले थोथे कर्मों का जंजाल नहीं मानते। उन्होंने अपने ध्यान से धर्म की एक नयी परिभाषा, एक नये स्वरूप का अनुभव किया—

नमो धर्माय महते धर्मो धारयति प्रजाः। (उद्योग० १३७/९)

व्यक्ति को, राष्ट्र को, जीवन को, संस्थाओं को, लोक और परलोक सबको धारण करने वाले जो शाश्वत सर्वोपरि नियम हैं, वे धर्म हैं।

धारणद्धर्म इत्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः।
यत्स्याद्धारण संयुक्तं स धर्म इत्युदाहृतः।।

धर्म स्वर्ग से भी महान् है। लोक स्थिति का सनातन बीज धर्म है। इस दृष्टि से देखने पर धर्म गंगा के ओजस्वी प्रवाह की तरह जीवन के सुविस्तृत क्षेत्र को सिंचित और पवित्र करने वाला अमृत बन जाता है। राजाओं की जय और पराजय आने जाने वाली चीजें हैं। जीवन में सुख और दुख भी सदा एक से नहीं रहते। पर सम्पत्ति और विपत्ति में भी जो वस्तु एकसी बनी रहती है वह धर्म है। व्यास ने महाभारत संहिता लिखने के बाद उसके अन्त में अपने दृष्टि–कोण और उद्देश्य का निचोड़ चार श्लोकों में दिया है, जिसे भारत सावित्री कहते हैं। उसका अन्तिम श्लोक यह है–

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्।
धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः।।
नित्यो धर्मः सुख दुःखे त्वनित्ये।
जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः।।

अर्थात् काम से, भय से, यहाँ तक कि प्राणों के लिए भी धर्म को छोड़ना ठीक नहीं, क्योंकि धर्म नित्य है, सुख और दुःख क्षणिक है इसी तरह जीव भी नित्य है, जन्म और मृत्यु अनित्य है। मैं भुजा उठा कर कह रहा हूँ, पर कोई मेरी बात सुनने वाला नहीं है। 'धर्म से ही धन और काम मिलते हैं, उस धर्म का आश्रय क्यों नहीं लेते।' ये भारत सावित्री में व्यास के साक्षात् वचन हैं।

यदि धर्म जीवन को धारण करने वाला है और धर्म अच्छी चीज है तो जीवन भी मूल्यवान होना चाहिए। व्यास के धर्म में जीवन रोने–धोने या माया समझ कर खोने की चीज नहीं। उनकी दृष्टि में यह लोक कर्मभूमि है, परलोक फलभूमि होगा। देवदूत ने मुद्गल से कहा–

कर्मभूमिरियं ब्रह्मन् फलभूमि रसौ मता। (वन० २६१ / ३५)

वन में पांडवों के पास जाकर स्वयं व्यास ने यह मत रक्खा था। वे इस लोक में कर्मवाद को मानते हैं। उसके साथ देववाद को भी मानते हैं और दोनों के ऊपर अध्यात्म सबके केन्द्र में है। व्यास का यह श्लोक स्वर्ण अक्षरों में टाँकने योग्य है–

गुह्यं ब्रह्म तदिदं ब्रवीमि।
नहि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्। (शान्ति पर्व १८० / १२)

अर्थात् यह रहस्य ज्ञान तुमको बताता हूँ, मनुष्य से श्रेष्ठ अन्य कुछ नहीं है। व्यास का यह मानव केन्द्रिक (मैन ऐट सेन्टर ऑफ यूनिवर्स) मत हमारे अर्वाचीन ज्ञान–विज्ञान और सामाजिक अध्ययन में सर्वत्र व्याप्त होता जा रहा है। व्यास की परिभाषा के अनुसार कर्म मनुष्य की विशेषता है।

प्रकाशलक्षणा देवा मनुष्याः कर्मलक्षणाः। (अश्व० ४३ / २०)

कर्म करने से जो प्रकाश जीवन में आता है उसी से मनुष्य देव बन जाता है।

आत्माभिमान के साथ मनुष्य शरीर रखने से ही सारे लाभ प्राप्त होते हैं।

पाणिवाद

व्यास ने मानवी पुरुषार्थ की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हुए इन्द्र के मुख से पाणिवाद का व्याख्यान कराया है। जिनके पास हाथ हैं वे क्या नहीं कर सकते। जिनके हाथ हैं वे ही सिद्धार्थ हैं। जिनके हाथ हैं उनकी मैं सबसे अधिक सराहना करता हूँ। जैसे तुम धन चाहा करते हो, वैसे मैं तो पाँच अंगुलियों वाले हाथ चाहता हूँ । पाणि लाभ से बढ़ कर और कोई लाभ नहीं है[१२](शान्ति पर्व १८०/११,१२) । जैसा कर्म किया जाता है वैसा ही लाभ मिलता है, यही शास्त्रों का निचोड़ है–

यथा कर्म तथा लाभ इति शास्त्रनिदर्शनम्। (शान्ति २७९/२०)

किन्तु धनागम धर्म से होना चाहिए। व्यास जी के मन में धर्म का ऊंचा स्थान है, उसके अनुसार न केवल अर्थ वरन् काम और मोक्ष भी धर्म पर आश्रित हैं और यह राज्य भी धर्ममूलक है–

व्यास जी ने नगद धर्म पर बल दिया है। वे कहते हैं– मनुष्य लोक में ही जो कल्याण है उसे मैं अच्छा मानता हूँ(मनुष्य लोकेयच्छय: परमन्ये युधिष्ठिर,वन पर्व १८३/८८)। व्यास जी की दृष्टि में वह व्यक्ति अधूरा है जो लोक से दूर रहता है। 'जो मनुष्य स्वयं अपनी आंखों से ज्ञान प्राप्त करता है वही सब कुछ जान सकता है'–

प्रत्यक्षदर्शी लोकान सर्वदर्शी भवेन्नरः। (उद्योग पर्व ४३/३६)

त्रिवर्गोऽयं धर्ममूलं नरेन्द्र राज्यं चेदं धर्ममूलं वदन्ति। (वन०४/४)

व्यास की दृष्टि में लोक संग्रह और लोक धर्म बहुत मूल्यवान् पदार्थ है। आजगर मुनि को 'लोक धर्म विधानवित' अर्थात् लोक धर्म के सिद्धान्त और संगठन का वेत्ता (शा० १७९/९) कहा गया है। जो व्यक्ति लोकपक्ष का इतना समर्थक हो, उसे गृहस्थ धर्म का प्रशंसक होना ही चाहिए। व्यास के अनुसार धर्म के द्वारा प्रवृत गृहस्थ आश्रम सब आश्रमों में तेजस्वी मार्ग है, वह पवित्र धर्म है जिसकी उपासना करनी चाहिए।[१३]

व्यास और अध्यात्म

लोक, गार्हस्थ्य और मनुष्य के लिए जिस महापुरुष के मन में श्रद्धा है, जिसका दृष्टिकोण इन विषयों में इतना मंजा हुआ है, उसका अध्यात्म–शास्त्र भी तदनुकूल ही मानव को साथ लेकर चलता है। मनुष्य पंचेन्द्रियों से युक्त प्राणी है। इंद्रियाँ ही मानव को देव या असुर बना देती है। व्यास के अध्यात्मशास्त्र का सार इन्द्रियों का निग्रह है–

आत्मनस्तु क्रियापायो नान्यत्रेन्द्रिय निग्रहात् (उद्योग० ६९/१७)

इन्द्रियों को रोकने के सिवाय आत्मा की उन्नति का दूसरा उपाय नहीं है। विषयों की

ओर जाती हुई इन्द्रियों को वश में रखने से अध्यात्माग्नि प्रकशित हो उठती है। जिस प्रकर ईंधन के जलने से अग्नि चमक उठती है उसी प्रकार इन्द्रियनिरोध से महानात्मा प्रकाशित होता है। डसने के भाव से सर्प जाने जाते हैं, दम्भभाव से असुर, दानभाव से देव और दमभाव से महर्षि पहचाने जाने हैं, (आश्व० अ० २१)। वेद ज्ञान का रहस्य सत्य भाषण में है, सत्य का उपनिषद् इन्द्रियदमन है, और दम का फल मोक्ष है।

वेदस्योपनिषत्सत्यं सत्यस्योपनिषद्दमः।
दमस्योपनिषन्मोक्ष एतत्सर्वानुशासनम्।। (शा० २९९/१३)

आत्मनिरोध के द्वारा जो व्यक्ति जीवन में अपना मार्ग विषयों से भरे हुए जंगल में स्वयं निश्चित करता है, वह अपना ज्ञान औरों पर नहीं बघारता, बल्कि अपने आचार से औरों को उपदेश देता है। बोध्य ऋषि की कही हुई पुरातन गाथाओं को उद्धृत करके व्यास ने यही कहा है–

उपदेशेन वर्तामि नानुशास्मीह कंचन। (शा० २७८/६)

मैं अपनी करनी से सिखाता हूँ, कथनी से नहीं। वेदव्यास ऋजुभाव के मानने वाले हैं। ऋजुभाव की उपासना ब्रह्म की प्राप्ति है, कुटिलता मृत्यु का पद है। इतना ही ज्ञान का सार है, और सब झूठी वकवाद है।[१४]

काल धर्म

वेदव्यास के आध्यात्मिक दर्शन में कालधर्म का बड़ा स्थान है। उनकी आंखों ने समंत पंचक में हुए कुरु पांडवों के दारुण नाश को देखा। कुशाग्र बुद्धि और कल्याणाभिनिवेशी व्यक्ति इच्छा रहते हुए भी उस क्षय को नहीं रोक सके। यह कालचक्र की ही महिमा है। कर्म के साथ मिलकर काल ही संसार में बहुत तरह के उलटफेर करता है (श० २१३/१३)। काल के पर्याय धर्म के सामने सब अनित्य ठहरता है, कभी एक की बारी, कभी दूसरे की। महाभारत के अन्त में जो व्यक्ति स्त्री पर्व को देखे, वह इसके सिवाय और क्या कह सकता है–

न च देव कृतो मार्गः शक्यो भूतेन केनचित्।
घटतापि चिरं कालं नियन्तुमिति मे मतिः।।

कोई प्राणी कितनी भी कोशिश करे देव के रास्ते को नहीं रोक सकता। यह देव या उत्कट काल विश्व का नित्य विधान है। इसी का नामान्तर सनातन ब्रह्म है। वेदव्यास मानव जीवन की घटनाओं की ऊहापोह करते हुए उनके अन्तिक कारण की खोज में यहीं विश्राम लेते है। यह सच है कि मनुष्य विधाता के द्वारा निश्चित संसार के विधान को बदल नहीं सकता, पर वह इतना अवश्य कर सकता है कि उस सर्वोपरि शक्ति के रहस्यों का साक्षात्कर करके जवीन में ऋजुभाव को अपना ले। वह यह भी कर सकता है कि इन्द्रियों के निरोध और आत्म–चिंतन से आत्म–ज्योति को इसी शरीर में प्राप्त कर ले। यह शरीर मूँज–घास है, आत्मा उसके भीतर

की सींक है। जिस प्रकार मूँज से इषीका निकाली जाती है, वैसे ही योगवेत्ता शरीर में आत्मा का साक्षात्कार करते हैं। (आश्व० १९ / २२,२३)

व्यास की आज्ञा है कि जय नामक इतिहास सबको सुनना चाहिए। यह धुरंधर ग्रंथ भारतीय चरित्र और ज्ञान की पूर्णतम वर्णपट्टिका है। इसके निर्माता की प्रज्ञा सूर्यरश्मियों की तरह विराट् है। सारा भारत राष्ट्र महामुनि वेदव्यास के लिए अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है। हम भी हिमालय के शिलाप्रस्थ पर विराजमान बदरिकाश्रम के पुराण मुनि को प्रणाम करते हैं, जिनके पृथु नेत्रों में हमारे ज्ञान का सारा आलोक समा गया था, जिनका शालस्कन्ध के समान उन्नत मेरुदण्ड राष्ट्रीय मेरुदण्ड का प्रतीक था, जिनके चन्दनोक्षित कृष्णशरीर में हमारे शुभ आदर्श मानो राशिभूत होकर मूर्तिमान् हो उठे थे।

सन्दर्भ ग्रन्थ

१. यथा समुद्रो भगवान्यथा हिमवान् गिरि:। ख्यातावुभौ रत्ननिधी तथा भारतमुच्यते।। (आदि पर्व ५६,२७ श्रीसुकथनकर सम्पादित पूना संस्करण)

२. यो व्यस्य वेदांश्चतुरस्तपसा भगवानृषि:। लोके व्यासत्वमापेदे कार्ष्ण्यत्कृष्णत्वमेव च।। (आदि पर्व ९९,२५)

३. स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि कैलासं पर्वतं प्रति। अप्रमत्त: स्थितो दान्त: पृथिविं परिपालय:।। (सभा पर्व ४६,१७)

४. नाडिक पाइथालोजी।

५. नहि तृप्यामि पूर्वेषां ऋण्वानश्चरितं महत्। (आदि० ५६ / ३)

६. व्याकरण साहित्य में इन उपाख्यानों का उल्लेख 'यायात' और 'आधिराम' नामों से किया गया है (काशिका सूत्र ६ / २ / १०३)

७. भंडारकर इंस्टीट्यूट की मुख पत्रिका भाग १८, पृष्ठ १,७६; नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग ४५ पृ० १०५–१६२।

८. जैसे महापुरुषस्तव (शान्ति आ० ३३८), कृष्णनाम स्तुति (शा० आ० १६१), भगवन्नाम निरुक्ति (शा० अ० ३४१) और कृष्णस्तवराज (शा० आ० ४७)। स्तोत्र और सहस्रनामों का संग्रह इन्हीं दो पर्वों में अधिक है जो यह संदेहजनक है।

९. भीष्पपर्व अ० ९श्लो. ५,९। संजय धृतराष्ट से कह रहे हैं।

१०. राज मूलो महाप्राज्ञ धर्मो लोकस्य लक्ष्यते। प्रजा राजभयादेव न खादन्ति परस्परम्। न योनिदोषो वर्तेत कृषिर्न वणिक पथ:। मज्जेद्धर्मस्त्रयी न स्यद्यदि राजा न पालयेत्।। (शा० ब० ६८)

११. क्षतात् किल त्रायत इत्युदग्र: क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढ:। (रघुवंश २ / ५३) तथैव सो भूदन्वर्थो राजा प्रकृति रंजनात्। (रघु० ४/१२) अर्थात् रघु प्रकृतिरंजन के कारण सच्चे अर्थों में राजा कहलाए।

१२. अहो सिद्धार्थता तेषां येषां सन्तीहं पाणय:। अतीव स्पृहये तेषां येषां सन्तीह पाणय:।। पाणिपद्‌भय: स्पृहास्माकं यथा तव धनस्य वै। ना पाणिलाभादधिको लाभ: कश्चन विद्यते।।

१३. सर्वाश्रमपदे प्याहुर्गार्हथ्यं दीप्तनिर्णयम्। पावनं पुरुषव्याघ्र यं धर्मं पर्युपासते।। (श० ६६ / ३५)

१४. सर्व जिह्मं मृत्युपदमार्जवं ब्रह्मण: पदम्। एतावान् ज्ञानविषय: किं प्रलाप: करिष्यति।। (आश्व ११ / ४)

⏭ समर्थ दर्शन

मनाचे श्लोक

• अनुवादक प्र० म० सहस्त्रबुद्धे

गुरु समर्थ राम दास जी अध्यात्म साधना के दिव्य सिद्धि प्राप्त राष्ट्र भक्त सन्त थे। उन्होंने जन–जन में श्री राम जय राम जय जय राम का भक्ति भाव जगा कर जय जय रघुवीर समर्थ के भक्ति उद्घोष से निस्तेज समाज में राष्ट्र भक्ति की शक्ति जागृत की। राष्ट्र भक्ति की इसी शक्ति से छत्रपति शिवाजी ने मुगल शासकों का सामना करके हिन्दू साम्राज्य स्थापित किया। समर्थ गुरु रामदास ने समाज प्रबोधन के लिए अनेक पुस्तकें लिखी जिनमें दास बोध और मनाचे श्लोक अर्थात् मनोबोध की बहुत अधिक मान्यता है। मनाचे श्लोक में कुल २०५ श्लोक हैं जिनमें गुरु समर्थ राम दास जी की चतुर्थ जन्म शताब्दी के उपलक्ष्य में समर्थ दर्शन विषयान्तर्गत कुछ चयनित श्लोक यहां दिए जा रहे हैं। इन श्लोकों के आगे श्लोक संख्या मूल रचना के संख्या क्रम के अनुसार दर्शायी गई है। मूल श्लोक मराठी भाषा में लिखित हैं और इनका हिन्दी रूपान्तर पद्यानुसार प्र० ग०सहस्त्रबुद्धे द्वारा किया गया है।

मूल	***अनुवाद***
गणाधीश जो ईश सर्वा गुणांचा।	गणाधीश जो ईश है सद्गुणों का
मुळारंभ आरंभ तो निर्गुणाचा।	गुणी रूप प्रारंभ है निर्गुणी का।।
नमूं शारदा मूळ चत्वार वाचा।	स्मरे रूप चारों महाशारदा के।
गमूं पंथ आनंत या राघवाचा।।१।।	चलें पन्थ आकल्प श्रीराम जी के।।१।।
मना सज्जना भक्तिपंथेचि जावें।	सुनो चित्त हे भक्ति का पंथ धारो।
तरी श्रीहरी पाविजेतों स्वभावे।	हरिप्राप्ति साधो स्वयं को उबारो ।
जनीं निंद्य तें सव सोडूनि द्यावें।	कहें जो सभी निंद्य वो छोड़ देना।
जनीं वंद्य ते सर्व भावे करावें ।।२।।	कहें जो सभी वंद्य को जोड़ लेना।।२।।
प्रभाते मनीं राम चिंतीत जावा।	उषा काल में राम का ध्यान कीजे।
पुढें वैखरी राम आधीं वदावा।	न बोलें वृथा राम का नाम लीजे।
सदाचार हा थोर सांडूं नये तो।	सदाचार का ध्यान जो भी रखेगा।
जनीं तोचि तो मानवी धन्य होतो।।३।।	वही मान्य होगा वही धन्य होगा।।३।।

मूल	*अनुवाद*
सदा सर्वदा प्रीति रामीं धरावी। सुखाची स्वयें सांडि जीवीं करावी। देहेदु:ख तें सूख मानीत जावें। विवेकें सदा सस्वरूपी भरावें।।१०।।	सदा सर्वदा राम में प्रीति राखो। तदा दु:ख को भागता दूर देखो। अरे दु:ख को सौख्य ही छद्‌म मानो। विचारो जरा स्वात्म का रूप जानो ।।१०।।
मना सांग पां रावणा काय जालें। अकस्मात तें राज्य सर्वे बुडालें। म्हणोनी कुडी वासना सांडि वेगीं। बळें लागला काळ हा पाठिलागीं।।१३।।	कथा को स्मरो चित्त ! लंकापती की। हुआ नाश साम्राज्य का, दुर्गती की। बुरी वासना छोड़ दो पाठ सीखो। महाकाल की शक्ति को नित्य देखो।।१३।।
मनीं मानव व्यर्थ चिंता वहाते। अकस्मात होणार हाऊनि जातें। घड़े भोगणे सर्वही कर्मयोगे। मतीमंद तें खेद मानी वियोगे।।१७।।	मन में करे मानव व्यर्थ चिंता। लिखा जस विधाता वही सर्व होता। किया कर्म जैसे फलों को ही पाता। न हो बुद्धि तो दु:ख में चूर होता।।१७।।
त बोले मना राघवेंवीण कांही। जनी वाउर्गे बोलतां सूख नाहीं। घड़ी ने घड़ी काळ आयुष्य नेतो। देहांती तुला कोण सोडूं पहातो।।२३।।	न बोलो कभी अन्य वार्ता कुवार्ता। कहो नाम श्रीराम जो सौख्यदाता।। क्षणों में चला काल आयुष्य खाता। बिना राम के कौन हैं अन्य त्राता।।२३।।
भवाच्या भये काय भीतोसि लंडी। धरी रे मना धीर धाकासि सांडी। रघुनायका सारिखा स्वामि शीरीं नुपेक्षी कदा कोपल्या दंडीधारी।।२७।।	तजो भीरुता घोर कार्पण्य त्यागो। धरो धीरता वीरता चित्त जागो।। धरा हाथ है शीर्ष पे रामजी का। यदि क्रुद्ध हो तो भला किसी का।।२७।।
जया वर्णिती वेद शास्त्रे पुराणें। जयाचेनि योगें समाधान बाणे। तयालागि हे सर्व चांचल्य दीजे। मना सज्जना राघवीं वस्ति कीजे।।३९।।	जिसे वेद वेदांग गाते सुनाते। ऋषि ध्यान में हैं समाधान पाते।। मती चंचला दो उन्हीं के पदों में। अरे चित्त! मेरे रमो राम ही में।।३९।।

मूल	*अनुवाद*
सदा देवकाजी झिजे देह ज्याचा।	सदा ईश के कार्य में देह घोले।
सदा रामनामे वदे नित्य वाचा।	सदा जीभ से राम का नाम बोले।
स्वधर्मे चि चाले सदा उत्तमाचा।	स्वधर्मस्थ हो वो चले तत्वज्ञानी।
जगी धन्य तो दास सर्वोत्तमाचा।।४८।।	वही धन्य है राम का दास ज्ञानी।।४८।।
घनश्याम हा राम लावण्यरूपी।	घनश्याम श्रीराम सौंदर्यमूर्ती।
महाधीर गंभीर पूर्णप्रतापी।	महधीर हैं शूर विख्यात कीर्ती।
करी संकटी सेवकाचा कुडावा।	पुकारो उन्हें संकटों को भगाओ।
प्रभाते मनीं राम चिंतीत जावा।।६७।।	उषा काल में राम का रूप ध्याओ।।६७।।
जयाचेनि नामे महादोष जाती।	कहो नाम तो हैं महादोष जाते।
जयाचेनि नामे गति पाविजेती।	कुबुद्धि भगाते सुबुद्धि जगाते।
जयाचेनि नामे घडे पुण्य ठेवा।	कहो नाम तो पुण्य राशि जुटाओ।
प्रभाते मनीं राम चिंतीत जावा।।७१ ।।	उषा काल में राम का रूप ध्याओ।।७१ ।।
मुखी राम त्या काम बांधू शकेना।	कहो राम तो काम बाधा न पावे।
गुणे इष्ट धारिष्ट त्याचें चुकेना।	उसे योग्यता, इष्ट भी प्राप्त होवे।
हरी भक्त तो शक्त कामास मारी।	भजे राम वो कामसंहारकारी।
जगीं धन्य तो मारुती ब्रह्मचारी।।८७।।	भला अंजनीपुत्र जो ब्रह्मचारी।।८७।।
हरीकीर्तनें प्रीति रामी धरावी।	कथा राम की कीर्तनों में सुनाओ।
देहेबुद्धि नीरूपणीं वीसरावी।	कहो मग्नता से स्वयं को भुलाओ।
परद्रव्य आणीक कांता परावी।	पर द्रव्य को मृत्तिकाखण्ड मानो।
येदर्थी स्वये सांडि जीवीं करावीं।।१०३।।	परस्त्री सदा वंद्य माता ही जानो।।१०३।।
महां भक्त प्रल्हाद हा कष्टवीला।	महाभक्त प्रह्लादने कष्ट पाया।
म्हणोनी तयाकारणें सिंहय जाला।	उसे तारने ओढली सिंह काया।।
न ये ज्वाळ वीशाळ संन्नीध कोण्ही।	महाघोर थी उग्रता मूर्त कीन्ही।
नुपेक्षी कदा देव भक्ताभिमानी।।१२१।।	नुपेक्षे कभी देव भक्ताभिमानी।।१२१।।

मूल	*अनुवाद*
जनाकारणें देव लीळावतारा।	जनों के लिए मानुषी रूप लेता।
बहुतांपरी आदरें वेषधारी।	वनों में रहे देव सर्वस्वदाता।
तया नेणती ते जन पापरूपी।	चराते फिरे धेनु पूर्ण प्रतापी।
दुरात्मे महा नष्ट चांडाळ पापी।।१२६।।	उन्हें चीन्हते है न, वे घोर पापी।।१२६।।
नसे गर्व आंगी सदा वीतरागी।	न हो गर्व का लेश, होवे विरक्ति।
क्षमा शांति भेगी दया दक्ष योगी।	क्षमा शांति की योग की दक्ष मूर्ति।
नसे लोभ ना क्षोभ ना दैन्य वाणा।	न हो लोभ ना क्षोभ ना दीनता हो।
यही लक्षणी जाणिजे योगिराणा।।१३४।।	गुणों से इन्हीं योगराजा सजा हो।।१३४।।
बहूतां परी कूसरी तत्त्वझाडा।	महत्तत्व को खोज पाना कला है।
परी पाहिजे अंतरी तो निवाड़ा।	जिसे पूर्ण श्रद्धा उसे वो मिला है।
मना सार साचार ते वेगळे रे।	उसी को सभी सृष्टि का सार मानो।
समस्तांमधे येक ते आगळे रे।।१५२।।	अरे विश्व से वो निराला ही जानो।।१५२।।
बहू शास्त्र धुंडाळिलां वाड आहे।	बड़े शास्त्र है ग्रंथ भी हैं अनेको।
जया निश्चयो येक तो ही न साहे।	नहीं काम के जो न दे निश्चयों को।
भली भांडती शास्त्रबोधें विरोधें।	जहाँ शास्त्र पांडित्य मैं तू सिखाये।
गती खुंटती ज्ञानबोधे प्रबोधे।।१५७।।	वहाँ सद्‌गती कौन कैसे दिखाये।।१५७।।
सदा सर्वदा राम सन्नीध आहे।	सदा सर्वदा राम जी पास ही हैं।
मना सज्जना सत्य शोधून पाहे।	अरे चित्त मरे निरा सत्य ये हैं।
अखंडीत भेटी रघुराज योगु।	मिलो ईश से भेंट तत्काल पाओ।
मना सांडि रे मीपणाचा वियोगु।।१८६।।	अहंकार त्यागो बने दास जीओ।।१८६।।
भुतें पिंड ब्रह्मांड हे ऐक्य आहे।	महाभूत में पिंड ब्रह्मांड भी है।
परी सर्व ही सस्वरूपी न साहे।	उसी से निराला स्वयं रूप जो है।
मना भासले सर्व काही पहावे।	लखो वस्तुएँ सर्व जो देश पाओ।
परी संग सोडूनि सुखी रहावें।।१८७।।	निरासक्त हो सौख्य में मग्न होओ।।१८७।।

मूल

मही निर्मिली देव तो बोळखावा।
जया पाहतां मोक्ष तात्काळ जीवा।
तया निर्गुणालागि गूणे पाहावें।
परी संग सोडूनि सूखे रहावें।।१८९।।

नभी वावरे जो अणुरेणु कांहीं।
रिता ठाव या राघवेवीण नाही।
तया पाहतां पाहतां तेचि जाले।
तिथे लक्ष आलक्ष सर्वे बुडाले।।१९६।।

नभे व्यापिले सर्व सृष्टीस आहे।
रघुनायका ऊपमा ते न साहे।
दुजेवीण जो तोचि तो हा स्वभावे।
तया व्यापकु व्यर्थ कैसे म्हणावें।१९८।।

कळे आकळे रूप ते ज्ञान होतां।
तिथे आटली सर्व साक्षी अवस्था।
मना उन्मनी शब्द कुंठीत राहे।
तो गे तोचि तो राम सर्वत्र पाहे।।२००।।

मनी सर्वही संग सोडूनि द्यावा।
अती आदरे सज्जनाचा धरावा।
जयाचेनि संगे महां दु:ख भंगे।
जनी साधनेवीण सन्मार्ग लागे।।२०३।।

मना संग है सर्व संगास तोड़ी।
मना संग हा मोक्ष तत्काल जोड़ी।
मना संग हो साधकां शीघ्र सोडी।
मना संग हा द्वैत निशेष मोडी।।२०४।।

मनाची शतें ऐकतां दोष जाती।
मतीमंद ते साधना योग्य होती।
चढ़े ज्ञान वैराग्य सामर्थ्य अंगी।
म्हणे दास विश्वासतां मुक्ति भोगी।।२०५।।

अनुवाद

मही निर्मिता को? उसे ठीक जानो।
उसे देखते ही मिला मोक्ष मानों।
गुणी को भजो निर्गुणी ईश पाओ।
निरासक्त हो सौख्य में मग्न होओ।।१८९।।

यहाँ भी वहाँ भी भरा व्योम जो है।
उसी भाँति सर्वत्र श्रीराम जी है।
उन्हें देखते देख तद्रूप होओ।
कहीं दृश्य अदृश्य वस्तु न पाओ।।१९६।।

अहा व्योम है सर्वब्रह्माण्ड व्यापी।
नहीं तुल्य है रामदीर्घ प्रतापी।
नहीं द्वैत वा द्वंद्व वो एक ही हैं।
नहीं व्याप्त या व्यापता दो कहीं हैं।।१९८।।

प्रभु राम के रूप का ज्ञान पाओ।
न साक्षित्व साक्षी स्वयं को भुलाओ।
बनो उन्मना शब्द भी नष्ट होंगे।
जहाँ भी लखो राम ही राम होंगे।।२००।।

तजो चित्त जो संग है हानिकारी।
करो नित्य सतसंग जो लाभकारी।
उसी से महाकुम्भ भी भाग जाता।
उसी से बिना कष्ट है सौख्य आता।।२०३।।

करो चित्त सत्संग जो बंध तोड़े।
वही श्रेष्ठ जो मोक्ष तत्काल जोड़े।
अरे साधकों को सदा है सुहाता।
इसी से सदा द्वैत संपूर्ण जाता।।२०४।।

मनो बोध के श्लोक दोषोपहारी।
तथा ज्ञान सामर्थ्य वैराग्यकारी।
बनोगे तप: साधनायुक्त योगी।
कहे दास विश्वास से मुक्ति होंगी।।२०५।।

।। जय जय रधुवीर समर्थ ।।

ऋषि परम्परा

● डा० ओम प्रकाश शर्मा

ऋषि शब्द के उच्चारण से हमारे मन में ज्ञान, भक्ति, तप, ब्रह्मतेज, सत्य, परोपकार, क्षमा, अहिंसा आदि भाव जागृत हो जाते हैं। जब वैदिक मन्त्रों, आख्यानों तथा अन्य प्रसंगों पर चर्चा होती है तो वैदिक ऋषियों के नाम समक्ष आते हैं। खगोल विद् आज भी आकाश गंगा के तारामण्डल में सप्तर्षि तारों की चर्चा करते हुए सुनाई देते हैं। भारतीय ग्रामीण परिवेश में विद्यमान मन्दिरों के पुजारी भी सांयकाल एवं प्रातः काल आकाश में सप्तर्षि तारों को दिखाते नज़र आते हैं। यही नहीं कुछ विद्वान जीवन दर्शन पर ज्ञान प्रदान करते हुए आँख, कान, नाक, रसना, त्वचा, प्राण और मन आदि देह में स्थित सप्तर्षियों की बात भी करते हुए दिखाई देते हैं। प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि कौन है ये ऋषि तथा क्या है इन ऋषियों की परम्परा? ये कुछ ऐसे गम्भीर प्रश्न हैं जो इस ब्रह्माण्ड में मानव सृष्टि के बौद्धिक विकास के साथ सीधे–सीधे जुड़े हैं। भारतीय ऋषि परम्परा पर विचार करने से पूर्व हमें ऋषि शब्द के व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ को जानना आवश्यक है। इस शब्द की व्युत्पत्ति तथा प्रयोग में आने वाले अर्थों से ही सभी गम्भीर प्रश्नों के उत्तर तथा ऋषि परम्परा की जानकारी संभव है।

ऋषि शब्द ऋष् गतौ धातु से औणदिक इन् प्रत्यय (इन् सर्वधातुभ्यः, उणादिसूत्र ४. १२६) के योग से निष्पन्न होता है। अतः इस शब्द का व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ हुआ मन्त्र द्रष्टा। ऋषियों ने वेद मन्त्रों का दर्शन किया, इसीलिए ***'ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः'*** कहा जाता है। निरूक्त के नैगम काण्ड में ऋषि शब्द की निष्पत्ति करते हुए कहा गया है– ***'ऋषि दर्शनात् स्तोमान् ददर्श'*** अर्थात् ऋषि शब्द दर्शन से निष्पन्न होता है। जिन्होंने स्तोमों का दर्शन किया वे ऋषि कहलाते हैं। (निरुक्त २.११.) ऋषि शब्द की निष्पत्ति से तो केवल इसके अर्थ का पता चला। अब हम सप्तर्षि शब्द के प्रयोग की चर्चा करें। इसी से भारतीय ऋषि परम्परा की ओर संकेत संभव है। श्रीमद्भावतपुराण में उल्लेख आया है कि सृष्टि के विस्तार के लिए ब्रह्मा जी ने अपने ही समान दस मानस पुत्रों को पैदा किया। ये मानस पुत्र–मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ, दक्ष तथा नारद नाम से विख्यात हैं–

मरीचिरत्र्यगिङ्रसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
भृगुर्वसिष्ठो दक्षश्च दशमस्तत्र नारदः।।

(श्री मद् भा० पु० ३.१२.२२)

यही मानस पुत्र ऋषि भी कहलाते हैं। अर्थात् इन्हीं मानस पुत्रों के लिए ऋषि शब्द का प्रयोग आदि काल से हुआ। यही आदि ऋषि सर्ग है। ब्रह्मा के यही मानस ऋषि भिन्न–भिन्न मन्वन्तरों में सप्तर्षियों के रूप में अवतरित होते रहते हैं। सप्त ऋषियों की संख्या के सन्दर्भ में यजुर्वेद में एक मन्त्र आया है जो स्वायम्भुव मन्वन्तर के वैदिक ऋचाओं के द्रष्टा–काश्यप,

अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि तथा भरद्वाज आदि सप्त ऋषियों की ओर महत्त्वपूर्ण संकेत करता है—

"सप्त ते अग्ने समिध: सप्त जिह्वा: सप्त ऋषय:
सप्त धाम प्रियाणि। सप्त होत्रा: सप्तधा त्वा यजन्ति
सप्तयोनीरा पृणस्व घृतेन स्वाहा:।। (यजु १७.७९)

वेद के मर्म को जानने के इच्छुक विद्वानों में एक बहस उठी कि वेदों के ऋषि मन्त्रों के कर्त्ता थे अथवा द्रष्टा। इस संदर्भ में यहां सभी पक्षों को उद्धृत किया जा रहा है। पश्चिमी विद्वानों की आधिभौतिक दृष्टि में वेद ऋषियों द्वारा प्रणीत शब्द राशि के समूह हैं। पाश्चात्य विद्वानों के दृष्टिकोण के अनुसार जो ऋषि उसके मन्त्र विशेष से सम्बद्ध हैं, वे ही वास्तव में उसके रचयिता हैं। अत: उनकी दृष्टि में ऋषि वेद मन्त्रों के कर्ता हैं, द्रष्टा नहीं। पाश्चात्य विद्वानों के तर्क भी ऋग्वेद के कुछ मन्त्रों के अर्थों पर आधारित हैं।

यहां दो मन्त्रों को उद्धृत किया जा रहा है। ***'इदं ब्रह्म क्रियमाण नीवय:'*** (ऋ० ७/३६/४) तथा ***'ब्रह्म कृण्वन्तो हरिवो वसिष्ठ:'*** (ऋ.७/३७/४) आदि मन्त्रों में ऋषियों का मन्त्र कर्त्ता होना स्पष्ट होता है द्रष्टा नहीं। वस्तुत: ऋग्वेदादि के ये मन्त्र भले ही ऋषियों के मन्त्र कर्त्ता की ओर संकेत करते हों परन्तु इनके गूढ रहस्यों को जानना भी आवश्यक है। वैदिक मन्त्रों के अनुशीलन से प्रतीत होता है कि ऋषियों को अलौकिक सामर्थ्य प्राप्त था। यही नहीं दैवी प्रतिभा के बल पर ऋषियों ने अपने प्रातिभ चक्षु से इन मन्त्रों का दर्शन किया। ऋग्वेद सप्तम मण्डल के तेंतीसवें सूक्त के सात से तेरह मन्त्रों में इस आशय का स्पष्ट उल्लेख आया है। यही नहीं ऋग्वेद के कई मन्त्रों में ऋषि वसिष्ठ को अलौकिक रीति से प्रदान किए गए ज्ञान का भी उल्लेख आया है। (ऋ.७/८७/४) ऋषियों के अलौकिक सामर्थ्य के सन्दर्भ में वाक् की प्रार्थनाओं का विश्लेषण भी आवश्यक है। वाक् सम्बन्धी एक स्तुति में उल्लेख आया है कि वाक् ने ऋषियों के भीतर प्रवेश किया—

यज्ञेन वाच: पदवीयमायन्
तामन्वविन्दन् ऋषिषु प्रविष्टाम्।। (ऋ.१०.७१.३)

अनेक मन्त्र वैदिक वाणी की नित्यता को भी दर्शाते हैं। वाणी की अलौकिक शक्ति के बल पर ही ऋषियों में ब्रह्म नि:सृत मन्त्रों के साक्षात् दर्शन करने का सामर्थ्य उत्पन्न हुआ था। आदि काल से ही इन ऋषियों ने वेद मन्त्रों के दर्शन कर अपनी प्रतिभा के बल से श्रौत परम्परा से कई सदियों तक इन मन्त्रों को बुद्धि में जीवित रखा। इसी लिए वेदों को श्रुति भी कहा जाता है। पाश्चात्य तथा कुछ भाषा शास्त्रीय अध्ययन को मानक मानने वाले भारतीय चिन्तकों ने ऋग्वेदादि मन्त्रों के आधिभौतिक पक्षों के आधार पर वेदों को अर्वाचीन माना। इन का दृष्टिकोण ऋषियों को मन्त्रों का कर्त्ता ही उद्घोषित करता है। इसके विपरीत वेदों के मर्मज्ञों ने ऋषियों के उन पक्षों का भी वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है जिनमें श्रौत परम्पराओं, वाणी की क्षमताओं तथा ऋषियों की अलौकिक प्रतिभा का सूक्ष्म अध्ययन विद्यमान है। निरुक्तकार ने निरूक्त में ऋषियों के मन्त्र द्रष्टा होने की पुष्टि वेदों के सूक्ष्म विवेचन के आधार पर ही की है—

"तद्यदेनांस्तपस्यमानामृब्रह्म। स्वयम्भ्वभ्यानर्षत् त ऋषियोऽभर्वस्तदृषीणामृषित्वमिति विज्ञायते ऋषि दर्शनात्। मन्त्रान् ददर्श इत्यौपमन्यव:।।" (निरुक्त)

वस्तुत: ऋषियों के मन्त्र द्रष्टा, मन्त्र कर्त्ता एवं मन्त्र वक्ता आदि चरण ऋषिकुलों के क्रमिक विकास की ओर संकेत है। ऋषि कुलों के प्रथम विकास अथवा सर्ग में वे ब्रह्मा के मानस पुत्रों के रूप में हमारे समक्ष आते हैं। द्वितीय चरण में भिन्न—भिन्न मन्वन्तरों में सप्तर्षियों के रूप में अवतरित होते हैं। इन्हीं सप्तर्षियों ने सर्वप्रथम वेद मन्त्रों के दर्शन किए अत: यह मन्त्र द्रष्टा का चारण हैं। जल प्लावन के उपरान्त प्रत्येक मन्वन्तर में ये ही ऋषि भूतल पर अवतीर्ण होकर वेदों का उद्धार करते हैं। वेदों की ज्ञान राशि इसी आधार पर सुरक्षित रहती है। इसी कारण इन्हीं सप्तर्षियों के कुल वंश दर—वंश परम्परा से विकासोन्मुख हुए। ऋषि कुलों के ऋषि मन्त्र कर्त्ता तथा वक्ता भी बने। ये चरण वर्तमान मन्वन्तर के ऋषि कुलों के क्रमिक विकास की ओर संकेत है। ऋषि कुलों के क्रमिक विकास के आधार पर यहां ऋषियों के चार चारणों पर चर्चा की जा रही है।

ऋषि शब्द के व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ, उनकी अलौकिक प्रतिभा, ब्रह्मस्यूत वेद मन्त्रों के साक्षात् दर्शन तथा वाणी के इनमें प्रवेश करने के पक्षों के आधार पर ऋषि शब्द के चार चरण स्पष्ट होते हैं— १. असल्लक्षण ऋषि, २. रोचना लक्षण ऋषि, ३. दृष्टि लक्षण ऋषि तथा ४. वक्तृलक्षण ऋषि। वेदमर्मज्ञोंने ऋषियों के अर्थ वेद मन्त्रों के विश्लेषण के आधार पर किए हैं। असल्लक्षण ऋषि प्राण को कहा जाता है, रोचना लक्षण ऋषि तारामण्डल के सप्तर्षियों के लिए प्रयुक्त किया गया है तथा दृष्टि लक्षण ऋषि और वक्तृ लक्षण ऋषि पद त्रिगुणात्मक साक्षात् शरीरधारी ऋषियों के लिए प्रयुक्त हुए हैं। क्रमश: इन चारों के शाब्दिक अर्थों का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है—

१. असल्ल्क्षण ऋषि :— शतपथ ब्राह्मण में असत् और सत् की व्याख्या असत् लक्षण ऋषि के स्वरूप को स्पष्ट करने में महत्त्वपूर्ण है। वहां प्रश्न आया है कि असत् क्या है? प्रत्युत्तर आता है कि असत् का अर्थ ऋषि है। पुन: प्रश्न आता है कि ऋषि क्या है? उत्तर आता है कि ऋषि प्राण है। शतपथ ब्राह्मण में ही प्रसंग आया है कि पितर और देवता भी यद्यपि प्राण माने जाते हैं परन्तु ऋषि शुद्ध प्राण है। इसी कारण मनुस्मृति में ऋषियों से पितरों और पितरों से देवताओं की उत्पत्ति मानी गई है।

शतपथ ब्राह्मण वस्तुत: ऋषि को असत् कहता है। अत: वह ब्रह्म स्वरूप हुआ। भारतीय दर्शन में ब्रह्म के शेष दो रूप सद् तथा सदसद् कहे गए हैं। असद् प्राण है तो सद् वाक् तथा सदसद् मन कहलाता है। यही तीनों कार्य ब्रह्म कहे जाते हैं। सूक्ष्म विवेचन से यह बात पुष्ट होती है कि स्वयम्भू के प्राण ऋषि हैं। इसी प्रकार पितृ को परमेष्ठी के प्राण, देवों को सौर के प्राण, गन्धर्व को चान्द्र प्राण एवं वैश्वानर को पार्थिव प्राण माना गया है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में एक मन्त्र आया है—

"विरूपास इद्ऋषयस्त इद्गम्भीरवेपस:" (ऋक्० १०.६१.५) इस मन्त्र के विश्लेषण से ऋषि

प्राण यद्यपि अनेक प्रकार के हैं परन्तु मुख्यत: उन्हें आधिदैविक, आध्यात्मिक और आधिभौतिक रूप से तीन अर्थों में विभक्त किया जा सकता है। प्राणात्मक ऋषि के ये प्रकार सृष्टि प्रक्रिया की ओर महत्त्वपूर्ण संकेत प्रदान करते हैं। आधिदैविक अर्थ स्वरूप मनु तत्त्व हिरण्य गर्भ के केन्द्र में है तथा प्राणात्मक ऋषि उसमें रश्मि रूप में व्याप्त है। हिरण्यगर्भ मण्डल के ये मानव प्राण विराट् पुरुष का स्वरूप निर्मित करते हैं। आध्यात्मिक रूप में ये ऋषि प्राण मन को आधार बना कर पूरे शरीर में व्याप्त रहते हैं। इसी प्रकार आधिभौतिक स्तर पर ये अंगिरस् अग्नि को आधार बना कर पदार्थ में व्याप्त रहते हैं।

ऋग्वेद के एक मन्त्र में उल्लेख आया है कि ऋषियों में छह ऋषि युग्म रूप में रहते हैं और एक ऋषि एकाकी स्थित है—

साकञ्जानां सप्तथमाहुरेकजं षडित् यमा ऋषयो देवजा इति।
तेषामिष्टानि विहितानि धामशः स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः।।

ऋक्. १.२६४.१५

ऋग्वेद का यह मन्त्र भारतीय ऋषि परम्परा को स्पष्ट करने में विशेष महत्त्व रखता है। शरीर के आन्तरिक ब्रह्माण्ड के सप्त ऋषियों, तारामण्डल के सप्त ऋषियों एवं वेदों के द्रष्टा सप्त ऋषियों के स्वरूप इस मन्त्र के माध्यम से सहज ही समझे जा सकते हैं। उपर्युक्त आधिदैविक, आध्यात्मिक और आधिभौतिक विभागों तथा अर्थों के आधार पर सप्तर्षि के शाब्दिक और सांकेतिक अर्थों को समझना और भी आसान है। माधवाचार्य ने छ: ऋतुओं को दो–दो ऋतुओं के युग्म के रूप में तथा परिगणित बढ़े हुए एक मास को सातवां मास माना है। ये ही उनके अर्थ में आधिदैविक सप्तर्षि हैं। आध्यात्मिक अर्थ के रूप में दो नेत्र, दो कान, दो नासिका और सातवाँ मुख एकाकी है। ये आध्यात्मिक सप्तर्षि हैं जो मनुष्य शरीर के आन्तरिक ब्रह्माण्ड की ओर संकेत करते हैं। अथर्ववेद में भी इन्द्रियों को दिव्य ऋषि कहा गया है। इन्हें शरीर के रक्षक माना गया है। (अथर्व ६.४१.३) यही नहीं वहां उल्लेख आया है कि सात ऋषियों को शुभ विचार वाली छवि प्रदान करने से जीवन अभय, तेज और दीर्घायु युक्त होता है। (अथर्व ६.४०.१) वेद जिन सात इन्द्रियों को ऋषि रूप मानता है वे आँख, कान, नाक, रसना, त्वचा, प्राण और मन हैं। आधिभौतिक स्तर पर सात तारों में से छ: युग्म रूप में रहते हैं और सातवाँ एकाकी रहता है। ये ही आधिभौतिक सप्तर्षि हैं।

शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थ में प्राण रूप ऋषियों के कर्मों की ओर भी संकेत हैं। वहां पर वर्णन आया है कि वसिष्ठ मुख्य पात्र है। यह प्राण सब इन्द्रियों को शरीर में वास देता है। बिना प्राण के किसी भी इन्द्रिय का ठहरना संभव नहीं।

प्राणो वै वसिष्ठः ऋषि। यद्वैनं श्रेष्ठस्तेन वसिष्ठः।
अथो यद् वस्तृतमो वसति तेनो एव वसिष्ठः।।

(शतपथ ८.१.१.६)

इसी प्रकार वहां दूसरा प्राण भारद्वाज कहा गया है। भारद्वाज मन है। मन का निर्माण वाज अर्थात् मन से होता है— ***मनो वै भारद्वाज ऋषिः। अन्नं वाजः। यो वै मनो बिभर्ति।।*** (शतपथ ८.

१.१.६) चक्षु को जमदग्नि ऋषि कहा गया है। जमदग्नि जगमत् है अर्थात् जगत को जानने वाला। चक्षु ही जगत को देखता है। अत: जमदग्नि कहलाता है। श्रोत्र को विश्वामित्र कहा गया है। कर्ण से हम जिसकी बात सुनते हैं वह हमारा मित्र बन जाता है। इसलिए श्रोत्र विश्वामित्र ऋषि है। वाक् विश्वकर्म ऋषि है। वाक् ने ही सब संसार निर्मित किया है।

वाग्वै विश्वकर्म ऋषि: वाचहीदं सर्वं कृतम्।
तस्माद् वाग् विश्वकर्म ऋषि।। (शतपथ ८.१.२.६)

इस प्रकार असल्लक्षणा ऋषियों के स्वरूप की परम्परा को समझा जा सकता है।

२. रोचना लक्षण ऋषि : प्राणात्मक ऋषि के तीन स्वरूपों में आधिभौतिक स्वरूप के अन्तर्गत रोचनालक्षण ऋषि परम्परा को समझा जा सकता है। रोचना लक्षण तारामण्डल, जिन्हें सप्तर्षि कहा जाता है, में भी ऋषि तत्त्व विद्यमान है। पूर्व में मरीचि, पश्चिम में अंगिरा। इन दोनों तारों के मध्य अरुंधति के साथ वसिष्ठ ऋषि। अंगिरा के निकट अत्रि उसके आगे पुलस्त्य, पुलस्त्य से आगे पुलह एवं पुलह के आगे क्रतु ऋषि स्थित है। ये ही आधिभौतिक सप्तर्षि की परम्परा है। ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ में आधिभौतिक अर्थ के सन्दर्भ में भृगु, अङ्गिरा और अत्रि के सांकेतिक अर्थ स्पष्ट किए गए हैं–

अर्चिषि भृगु: सम्बभूव, अङ्गारेष्वङ्गिरा सम्बभूव।
अथ ददङ्गारा अवशान्ता: पुनरूद्द्दीप्यन्त, अथ बृहस्पति।। (ऐतरेय ब्रा० ३/३१)

अर्थात् भृगु का अर्थ ज्वाला, अङ्गिरा का अर्थ अङ्गार है। अत्रि पारदर्शिता को रोकता है। यदि अंगारों के बुझ जाने पर उन्हें पुन: जला दिया जाए तो वे बृहस्पति कहलाता है।

खगोल विद्या के ये सप्तर्षि ऋषि परम्परा में विशेष महत्व रखते हैं। वैदिक ऋषियों ने इन सप्तर्षियों के कई रहस्यों के साक्षात्कार किए थे। इसी कारण इनके नामकरण भी वैदिक ऋषियों के नामों पर किए गए। रोचना लक्षण ऋषियों के सन्दर्भ में कहा जाता है कि ब्रह्मा जी के मानस पुत्र ऋषि सप्तर्षियों के रूप में महाप्रलय काल में सूक्ष्मतम स्वरूप में सप्तर्षि मण्डल में स्थित रहते हैं। महाप्रलय के उपरान्त प्रत्येक मन्वन्तर में इन्हीं सप्तर्षियों ने भूलोक में त्रिगुणात्मक शरीर में अवतरित होकर वेदों का उद्धार किया।

३. द्रष्ट लक्षण ऋषि :– ऋषि के सांकेतिक, अतिसूक्ष्म तथा आधिभौतिक अर्थों की विवेचना के उपरान्त अब वेदों के ऋषियों की जानकारी अपेक्षित है। भारतीय परम्परा में वैदिक ऋषियों को मन्त्र द्रष्टा और मन्त्र कर्ता दोनों कहा है। ब्रह्म विद्या का नाम वेद। यज्ञ के द्वारा ब्रह्म अपने आप को अनेक रूपों में परिणत कर लेता है। यज्ञ प्रक्रिया अपने आप में पूर्ण विज्ञान है। यही नहीं यज्ञ को धर्म भी कहा गया है।

वैदिक विषय वस्तु में धर्म और विज्ञान का विशिष्ट समन्वय विद्यमान है। अत: सूर्यविज्ञान, देवता विज्ञान, प्रजापति विज्ञान तथा सृष्टि विज्ञान आदि विषय सब वेद हैं। वेद में समस्त ज्ञान निहित है। ज्ञान–विज्ञान के समस्त तत्त्वों के दर्शन ही ऋषियों ने किए थे। धार्मिक, वैज्ञानिक अर्थात् दैविक एवं अतीन्द्रिय विषयों का साक्षात्कार करने वाले ऋषि कहलाते हैं। इसीलिए ये द्रष्टलक्षण ऋषि जाने जाते हैं। वैदिक साहित्य में इसीलिए कहा गया है कि –

"साक्षात् कृत धर्माण: ऋषियो बभूवु:।" वेदों का ज्ञान अनुमान से नहीं अपितु आर्ष दृष्टि से ही संभव है। ऋषियों ने ब्रह्म विद्या अर्थात् जिन्हें वेद कहा जाता है, के साक्षात् दर्शन किए थे। भारतीय ऋषि परम्परा का यह महत्त्वपूर्ण पक्ष है।

वक्तृ लक्षण ऋषि : ऋषि परम्परा के इस विभाग में ऋषियों का स्वरूप वक्ता के रूप में समझ आता है। ऋषि मन्त्रों का द्रष्टा भी है, कर्ता भी है और वक्ता भी है। इसका आशय ऋषि परम्परा का क्रमिक विकास है। ऋषि वक्ता भी है। जिस ऋषि ने वेद के जिस ज्ञान का उपदेश दिया वह उसका वक्ता बना। वस्तुत: जब वेद का अर्थ ज्ञान होता है तो ईश्वर स्वरूप होता है। जब वेद का अर्थ वृत्यात्मक ज्ञान होता है तो वेद ईश्वर द्वारा निर्मित कहलाता है। ऋषियों ने जब वेद के उस ज्ञान के दर्शन किए तो ऋषि मन्त्र द्रष्टा बने। मन्त्र द्रष्टा ऋषियों की संख्या वैदिक सूक्तों और मन्त्रों के आधार पर निर्धारित की जा सकती है। मूल संहिताओं के ऋषि मन्त्र द्रष्टा थे। उन्होंने ही मन्त्रों को अपनी प्रातिभ चक्षु से दर्शन कर उनकी रचना प्रारम्भ की। अत: वे कर्ता भी कहलाए। परम्परा यह रही कि जिस ऋषि ने जिस प्राण के दर्शन किए वह उसी प्राण के नाम से जाना जाने लगा।

भारत की पावन भूमि की ऋषि परम्परा को 'सप्तर्षि' क्रम से इस प्रकार समझा जा सकता है। अर्थात् इस परम्परा में सात ऋषि सृष्टि प्रर्वतक हैं जो प्राण ऋषि कहलाते हैं। सात ऋषि वेद मन्त्रों के प्रवर्तक हैं तथा सात ही ऋषि गोत्र के प्रवर्तक हैं। इन का क्रम इस प्रकार है–

(क) सृष्टि प्रवर्तक ऋषि प्राण – मारीचि, अङ्गिरा, वसिष्ठ, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु।

(ख) प्राणों का साक्षात् करने वाले वेद प्रर्वतक ऋषि – गृत्समद, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, भरद्वाज, वसिष्ठ और कण्व हैं।

(ग) गोत्र प्रवर्तक ऋषि – भरद्वाज, कश्यप, गौतम, अत्रि, विश्वामित्र, जगदग्नि और वसिष्ठ।

सप्तर्षि परम्परा ऐसे सात ऋषि कुलों की ओर संकेत है जिन्होंने नाभि स्वरूप प्रजापति की नित्य वाणी अथवा वाक् के दर्शन किए। वह नित्य वाक् जिसे हम ऋक्, यजु और साम रूप से जानते हैं। ऋक् सूर्य मण्डल है, उसकी ज्वाला साम है तथा पुरुष यजु: स्वरूप है। यही तीनों वाक् स्वयम्भू प्रजापति का निश्वास है। निश्वास प्रजापति का परिचायक है। इसीलिए वेदों को ब्रह्मा से उत्पन्न माना जाता है। विश्व के केन्द्रभूत सूर्य सम्बन्धी गायत्री छन्द इस सन्दर्भ में महत्त्वपूर्ण संकेत प्रदान करता है। इसी ज्ञान का दर्शन करने वाली सप्तर्षि कुल परम्परा है। क्रमानुसार इसी ऋषि कुल परम्परा से अन्य परवर्ती ऋषि कुलों की स्थापनाएं हुई। इन्हीं ऋषि कुलों में भारत वर्ष की बौद्धिक व्यवस्थाओं का सूत्रपात हुआ। यही नहीं इन्हीं ऋषिकुलों ने इच्छा, संकल्प और तप के माध्यम से ऐसे दूरदर्शी वैज्ञानिक विद्वानों का निर्माण किया जिनसे विश्व की सम्पूर्ण मानव जाति के विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ।

ऋक् हमारी प्रथम संहिता है। ऋग्वेद में जिन ऋषि कुलों का परिचय हमें उपलब्ध होता है, उनका यहां वर्णन करना भी आवश्यक है। ऋग्वेद में दस मण्डल हैं। द्वितीय मण्डल के ऋषि गृत्समद, तृतीय के विश्वामित्र, चतुर्थ के वामदेव, पचम के अत्रि, षष्ठ के भरद्वाज, सप्तम के

वसिष्ठ तथा अष्टम के कण्व ऋषि हैं। नवम मण्डल पवमान मण्डल के नाम से विख्यात हैं। इस मण्डल के मन्त्र सोम देवता से सम्बन्धित हैं। वस्तुत: इस मण्डल को ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल से अष्टम मण्डल तक की संहिता तैयार हो जाने पर इन्हीं के ऋषि कुलों ने तैयार किया। प्रथम और दशम के ऋषि क्रमश: शतर्चिन: तथा क्षुद्र सूक्त कहलाते हैं।

महर्षि वेद व्यास ने कण्व कुल के मन्त्रों को नारांशसी कहा है। वस्तुत: कण्व कुल ने कुछ मन्त्र दानदाताओं की प्रशंसा में रचे। इसी कारण इन्हें नाराशंसी मन्त्र कहा जाता है। आज इस ऋषि कुल का विशेष ऐतिहासिक महत्त्व है। प्रथम और दशम मण्डल भले ही बाद में संकलित हुए हों परन्तु इनका भी महत्त्व है। गृत्समद ऋषि परवर्ती काल में शौनक ऋषि के नाम से विख्यात हुए। यह ऋग्वेद की ऋषि परम्परा है। ऋग्वेद के उपरान्त यजुर्वेद तथा सामवेद में भी सूक्तों के अनुसार ऋषियों के नाम उल्लिखित हैं। अथर्व वेद में ऋषि कुलों के अनुसार कई ऋषियों के नाम विद्यमान हैं। अथर्व वेद में अत्रि, कण्व, जमदग्नि, अगस्त्य, अंगिरस, कश्यप, वसिष्ठ, श्यावाश्व, व्याघ्रयश्व, पुरूमीढ, विमद, सप्तवध्रि, भरद्वाज, गविष्ठर, विश्वामित्र, कुत्स, भृगु, कक्षीवान, कण्व, मेधातिथि, त्रिशोक, वाव्य उशना, गौतम, मुद्गल, अथर्वा, सोमरी, अर्चनाना, मनु, वामदेव, इक्ष्वाकु, नारद, काम्य, आत्स्य तथा वसु ऋषियों का उल्लेख आता है। पुराणों तक इन ऋषि कुलों का और विस्तार हुआ और कई और नए ऋषियों के नाम भी इस परम्परा में जुड़ते गए। महर्षि वेदव्यास इनकी धुरी है।

इस प्रकार भारतीय ऋषि परम्परा के चार चरण हमारे समक्ष आते हैं। प्रथम प्राण ऋषि का चरण है। शतपथ ब्राह्मण में प्राण ऋषि के अर्थ को सुन्दर विधि से स्पष्ट कर उन प्राण ऋषियों का साक्षात्कार करने वाले ऋषियों के नामकरण की ओर संकेत किया गया—

के त ऋषय: इति प्राणा वा ऋषयस्ते यत्पुरास्मात् सर्वस्मादिदमिछन्त: श्रमेण तपसारिषंस्तस्माद्दृषय:।। (शतपथ ब्राह्मण ६.१.१.१) अर्थात वे ऋषि कौन हैं? प्राण ही ऋषि है। सर्वप्रथम इच्छा, श्रम तथा तप से उन्होंने गति की, इसीलिए वे ऋषि कहलाए। इस ग्रन्थ में प्राणों का साक्षात् करने वाले ऋषियों का जो प्रसंग आया है, वह महत्त्वपूर्ण है। यह प्रसंग द्रष्ट लक्षण ऋषि एवं वक्तृलक्षण ऋषि के तृतीय और चतुर्थ चरण की ओर महत्त्वपूर्ण संकेत करता है। यही ये प्रथम सात ऋषि कुल थे जिन्होंने प्राण ऋषियों की साधना कर अपने यशोनाम स्थापित कर वेद की ऋचाओं का साक्षात् दर्शन किया तथा उनका उपदेश परवर्ती ऋषिकुलों को प्रदान किया। द्वितीय चरण में रोचना लक्षण ऋषियों का उल्लेख है। यह चरण इस लिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि हमारी सभ्यता ने वैदिक ऋषियों की विशिष्ट ज्ञान परक क्षमताओं को प्रामाणिक मानते हुए खगोल के विशिष्ट सप्तर्षियों को वैदिक ऋषियों के नाम प्रदान कर उन्हें अमरत्व प्रदान किया।

सप्तऋषि परम्परा का यह अर्थ कदापि नहीं कि यहां केवल सात ऋषि ही रहे हैं। क्रमिक विकास का प्रारम्भ भले सप्त ऋषि कुलों के आधार पर हुआ हो परन्तु धीरे—धीरे इसमें कई और ऋषि कुल सम्मिलित हुए। महाभारत युद्ध में प्रयुक्त हुए घोर अस्त्र—शस्त्रों से मानव समुदाय की जो बहुत बड़ी क्षति हुई थी, उस क्षति की भरपाई करने तथा समाज के लिए भावी व्यवस्थाओं को स्थापित करने के लिए नैमिषारण्य में ८८ हजार ऋषियों की सभा का उल्लेख आया है।

ऋषियों की यह संख्या ऋषि कुलों के क्रमिक विकास के विशिष्ट प्रमाण हैं। इस प्रकार भारत की ऋषि परम्परा के उपर्युक्त सभी चरण मानव सभ्यता के विकास की कहानी स्वयं ही बताते हैं। वस्तुत: भारत की पावन भूमि पर जन्मे ये ऋषि मानव जाति के प्राण हैं। ऋषि परम्परा के महत्त्व को देखते हुए भारतीय मानस आज भी इन ऋषियों की पूजा करता है। देवपूजा सिद्धान्तों के साथ–साथ भाद्रपद शुक्ल पंचमी 'ऋषि पंचमी' के नाम से मनाई जाती है। इस दिन सातों ऋषियों की पृथक्–पृथक् यथाशक्ति स्वर्णादि की प्रतिमा बनाकर उनकी प्रतिष्ठा कर ***'अरुन्धती सहित सप्तर्षिभ्यो नम:'*** मन्त्र से पूजा की जाती है। मन्त्र के ध्यान में यह बात संकल्प रूप में आती है कि ऋषि श्रेष्ठ ब्रह्मतेज और करोड़ों सूर्यों की आभा से सम्पन्न हैं। इन्हीं ऋषि कुलों में ज्ञान–विज्ञान की कई व्यवस्थाएँ स्थापित हुई। जीवन दर्शन के सभी सिद्धान्तों के साथ–साथ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को सुरक्षित तथा शान्तिमय बनाने के सिद्धान्त भी यहां निर्मित हुए। भारत के इन्हीं ऋषि कुलों ने पृथ्वी के विभिन्न भूभागों पर जा कर विभिन्न मानव सभ्यताओं की स्थापनाएँ की। अत: भारतीय ऋषि परम्परा मानव सभ्यता के विकास की महत्त्वपूर्ण कड़ी है। आज मानव वैज्ञानिक उन्नति के नाम पर मनुष्य के आन्तरिक ब्रह्माण्ड और बाह्य ब्रह्माण्ड को अनायास ही बहुत क्षति पहुँचा रहा है। मानव के जीवन दर्शन की दिशाएँ बदल रही हैं। पुरुषार्थ चतुष्टय के मूल्य परिवर्तित होते जा रहे हैं। विश्व शान्ति पर बहुत बड़ा प्रश्न चिह्न लग रहा है। अत: मानव सभ्यता की विपरीत बनती जा रही इन परिस्थितियों के लिए भारतीय ऋषि परम्परा की चिन्तन धारा आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी ऋषियों के जीवन काल में विद्यमान थी।

डॉ० ओमप्रकाश शर्मा
प्राध्यापक संस्कृत विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
हमीरपुर।

l anHlkwZph%

1 -vFkoZdsEnl (kfkoOc'Ub/kfoq]'os'ooSjfknudUn 'kklsa/LkFkk ¼vkqJgek]sf'k;kkjiqjA
2 -_zXolsEni(fkoOc'Ub/kfq]os'ooSjfkhukdUkns/k laLFkk ¼vkqJgek]sf'k;kkjiqjA
3 -;tqolsEZirfk(oOc'Ub/kfq]os'ooSjfkhukdUkns/k laLFkk ¼vkqJgek]sf'k;kkjiqjA
4 -,srcjzsk;k'(kM~xfq'#kd"`trq[kiknhfkgr`]f =k.kfdok'sgjflo|kdhy`jfh=to]sUnzeA
5 -v"Vk/i;kkf;fhku(fUkkZ]ix;sjk9]2]9 -

6 -Jhen~Hkkxor(Vkh/kn(jdlkfgyrd]rkA
7 -euqLedqqfYry(HvkdhV hdlkfgErq]b1Z9]46 -
8 -fu:jDkrt(okWMus'k]904 -
9 -'kroiFkkkv(P ;xqzrUFkedkky;kkZ yk j[k.klh] lao1r9~97 -

हिमाचल में देवयात्राओं की अनूठी परम्परा

• डा० सूरत ठाकुर

हिमाचल प्रदेश में देवयात्राओं की एक अनूठी परम्परा प्रचलित है। सभी देवी–देवता कुछ अन्तराल पर अपने–अपने देवलुओं के साथ वाद्ययन्त्रों की करतल ध्वनि के साथ देवयात्रा पर निकल पड़ते हैं। कुछ देवता प्रतिवर्ष यात्रा पर जाते हैं जबकि कुछ तीन, पांच, सात, बारह या बीस वर्षों के बाद अपने–अपने लाव–लश्कर के साथ यात्रा पर निकलते हैं। कुल्लु में देवताओं के यात्रा पर निकलने को 'फेरा देणा' कहते हैं। 'दयोवरा' का अर्थ है देवयात्रा। शिमला जिले के देवताओं की देवयात्रा के सम्बन्ध में मान्यता है कि बड़े देवता अपना आधिपत्य जतलाने के लिए यात्रा पर जाते हैं। मार्ग में जिन देवताओं के क्षेत्र से होकर वे गुज़रते हैं वे या तो उनके साथ ज़ोर आजमाइश करते हैं या उनपकी अधीनता स्वीकार करते हैं। जबकि कुल्लु में देवयात्राओं के सम्बन्ध में माना जाता है कि बड़े देवता शक्ति अर्जन हेतु तथा मेल–जोल बढ़ाने के लिए देवयात्रा पर निकलते हैं।

यात्रा के समय देवता के साथ के श्रद्धालुगण विभिन्न गांवों के मंदिरों, तीर्थों आदि में रात बिताते हुए आगे को प्रस्थान करते हैं। प्रायः जिस भी मंदिर में देवता ठहरता है, वहां के ग्रामवासी देवता के साथ आये लोगों को भोजन तथा रहने की व्यवस्था करते हैं। उस गांव के लोग अपने को सौभाग्यशाली समझते हैं जहां यात्रा के दौरान देवता ठहरता है। लोगों को पहले ही सूचना होती है कि देवता अमुक दिन उनके गांव में पहुंच रहा है। लोग एक–दो दिन पूर्व ही देवता के आगमन की तैयारी में जुट जाते हैं। देवयात्रा के गांव पहुंचने पर स्त्री–पुरूष, बाल–वृद्ध सभी गांव के बाहर देवता की आगवानी करते हैं। महिलाएं फूल मालाएं तथा पीतल की थाली में धूप, कुंगू, चावल के साथ देवता की पूजा–अर्चना करती हैं।

कुल्लु में हारगी भी देवयात्रा का ही रूप है। हारगी में हार शब्द का अर्थ होता है देवप्रजा। अर्थात जितने गांवों में जितने परिवार देवता को मानते हैं उसे हार कहते हैं। कई देवताओं की हार अर्थात प्रजाक्षेत्र एक गांव तक ही सीमित होता है जबकि कई देवता पांच–सात गांवों के अधिपति होते हैं। हार में रहने वाले लोगों को हारियान कहते हैं। प्रत्येक हार में रहने वाला परिवार देवता को जब देय 'कर' चुकाता है, तभी वह हारियान कहलाने का हकदार होता है। जैसे कि पूर्व में ही कहा गया है कि कुछ देवताओं के हार अधिक गांवों तक फैले होते है। अतः उन गांवों पर कृपा दृष्टि हेतु देवता उन गांवों की यात्रा पर निकलते हैं। यही हारगी होती है। कई बार देवता किसी मेले उत्सव के अतिरिक्त दिनों में अपने मित्र या बन्धु देवता के गांव में मेहमान के तौर पर जाते हैं। तब भी इसे हारगी कहते हैं।

प्रत्येक देवता की देवयात्रा एक हद तक बारात की तरह होती है। इसमें दस से लेकर

हजार—बारह सौ तक यात्री होते हैं। देवता की प्रजाक्षेत्र में प्रत्येक परिवार से एक व्यक्ति का देवयात्रा में जाना अनिवार्य होता है। जिस परिवार में किसी कारण से कोई व्यक्ति जाने में असमर्थ होता है तो उसे निश्चित रूपये देवता के कोष में जमा करने होते हैं। देवयात्रा के जुलूस में सबसे आगे फलौहरे (झंडे) उसके पीछे जोड़ी रणसिंगे और जोड़ी वाम तत्पश्चात करनाल, शहनाई, ढोल, नगारे और वाद्ययन्त्र बजाने वाले चलते हैं। उसके बाद सूरज पंखे, सोने, चांदी की छड़ियां, छत्र इत्यादि चलते हैं। फिर देवता का रथ चलता है। रथ के दायें—बायें चांदी के कुठदार चंवर और मोर छल झुलाने वाले और रथ के पीछे देवता के कारकारिन्दे तथा हारियान चलते हैं।

किन्नौर में भी देवी—देवता एक दूसरे देवताओं के गांवों में यात्रा पर जाते हैं। यहां छोटे देवता जब बड़े देवताओं से मिलने के लिए उनके गांव हारगी पर जाते हैं तो उस गांव के निवासियों को अपने देवता के आने की सूचना पहले नहीं देनी होती क्योंकि छोटे व्यक्ति भी बड़ों के घर जाने से पूर्व अपने आने की सूचना नहीं देते। जो देवता बड़े होते है। उन्हें छोटे देवता के गांववालों से बड़ा मानते हैं और उनके गांव जाकर साधिकार अपने आराम की वस्तुएं मांगते हैं। किन्नौर में ही जब देवता दूसरे गांव जाता है तो उसके मोहरे आदि एक किलटे में उसके साथ ले जाए जाते हैं इसे 'बुल्डो' कहते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि 'बुल्डो' के द्वारा उस गांव की बीमारियां आदि भी दूसरे गांव चली जाती हैं। अत: आतिथेय देवता 'बुल्डो' के किल्टे को मंदिर प्रवेश के समय ही धक्का मारकर गिराने का यत्न करता है।

लाहौल स्पिति का देवता 'घेपंग' भी तीन या पांच वर्ष पश्चात लाहौल घाटी की यात्रा पर निकल पड़ता है। इसकी पूरी यात्रा लगभग तीन मास में पूरी होती है। लोगों की मान्यता है कि जब घेपंग यात्रा पर निकलता है तो उसके बाद जब तक यात्रा पूरी करके अपने मंदिर में वापस नहीं पहुंचता तब तक बारिश नहीं होती। ऐसा हर यात्रा पर होता है। कभी—कभी राजा घेपंग कुल्लु में ठारह करडू के जनक जमलू देवता के पास मलाणा भी जाता है। कई दिनों की यात्रा के पश्चात मयलाणा पहुंचने पर उसका भव्य स्वागत होता है। रास्ते में यह गोशाल भी ठहरता है। मलाणा पहुंचने पर घेपंग को देव भौती दी जाती है। एक दिन मलाणा वासी पास के जंगल में देवदार के तीन शहतीर काट कर ले आते हैं और एक जगह रखते हैं। सुबह होने तक एक शहतीर अन्य दो शहतीरों से दूर हो जाती है। इसे देवता घेपंग का रथ माना जाता है। इसे रंग—बिरंगे दुपट्टों, डोरी बगैरह से सजाया जाता है। इसके एक सिरे पर पगड़ी बांध कर इसे रथ स्वरूप दिया जाता है वापसी में इसे लाहौल ले जाकर मंदिर में स्थापित किया जाता है।

एक दूसरे गांवों, परगनों तथा क्षेत्रों को सूत्र में पिरोने में ये देवयात्राएं बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। कई बार एक गांव वाले दूसरे गांवों में अपने सगे सम्बन्धियों से मिलने जाने की अभिलाषा रखते हैं तो उस समय देवता को घुमाने के लिए देवता से पूछा जाता है। देवता का मनुष्य के साथ मानव सदृश सम्बन्ध रहता है। इसी कारण देवता भी अपने—अपने सगे सम्बन्धियों से मिलनेको उत्सुक होते हैं। जिसके लिए इन यात्राओं का आयोजन किया जाता है। इन देवयात्राओं में पुरूष ही भाग लेते हैं। कहीं—कहीं महिलाएं भी इसमें शरीक होती हैं। मण्डी जनपद के शनोर बदार क्षेत्र में देवयात्राओं में स्त्रियां भी शामिल होती हैं। जिस परिवार में पुरूष नहीं होते या पुरूष दूर नौकरी पर गये होते हैं उस स्थिति में वहां महिलाएं भी देवयात्रा में शामिल होती हैं। देवयात्रा का उद्देश्य देशमुल्क देखना भी होता है। जिन लोगों ने देवता से

सम्बन्धित जिन गांवों को देखा नहीं होता है वे इसमें शरीक होने के लिए अधिक लालायित रहते हैं। वास्तव में रिश्तेदारों से मिलना भी होता है और क्षेत्र विशेष के दर्शन भी होते हैं। ये यात्राएं हिमाचली समाज के सामाजिक जीवन में बड़ी उपयोगी होती हैं। गांव वालों की धार्मिक भावना को बल प्रदान करती है। उन्हें नये आदमियों से मिलने का अवसर मिलता है। इन यात्राओं में देवता एक प्रकार से नेता, मार्गदर्शक और रक्षक का काम करता है। इन यात्राओं का एक अभिप्राय: सामूहिक शक्ति को दर्शाना भी होता है। अनजानी जगहों में एकदूसरे के साथ कैसे मिलजुल कर रहना है। दुनियादारी को कुछ दिनों को भूल जाना और देशाटन का लुत्फ उठाना भी इन देवयात्राओं का मकसद हो सकता है। प्राय: लोग अपने परिवार में गृहस्थी में व्यस्त रहते हैं। अपने खेतों–खलिहानों में दिनभर काम में जूझते रहते हैं। कई बार अकेलेपन को महसूस करते हैं। अत: अपने जीवन में नयापन लाने के लिए ये देवयात्राएं लोगों के लिए आवश्यक होती हैं।

महासू क्षेत्र में देवता के केदारनाथ की यात्रा में जाने पर गांव में शुभ कार्यों पर रोक लग जाती है। यहां देवताओं की केदारनाथ, बद्रीनाथ यात्रा प्राय: फरवरी–मार्च या अप्रैल में प्रारम्भ होती है। ताकि मई–जून में केदारनाथ के पट खुलने पर वहां पवित्र गुफा में दर्शन किये जा सकें। जून या जुलाई तक देवता अपने गांव वापस पहुंचते हैं। क्यारी क्षेत्र के देवता बौन्दरा की यात्रा २७ मार्च, २००१ में कई वर्षों के पश्चात हुई। देवता बौन्दरा के नेतृत्व में पडारा, डोमालू व चांवी देवता भी इस यात्रा पर जाते हैं। सजे–धजे इन देवताओं को यात्रा पर जाने से पूर्व गांव वासी इकट्ठा होकर इन्हें विदाई देते हैं। विदाई देते समय लोगों की आंखें नम हो जाती हैं। लोगों को ऐसा लगता है जैसे उनका कोई प्रिय सगा सम्बन्धी दूर देश की यात्रा पर गया हो।

शिमला जिला के गुठान गांव का प्रसिद्ध देवता डोम जिसे डोमेश्वर भी कहते हैं। फरवरी २००० में २० वर्षों के बाद यात्रा पर निकला था। डोमेश्वर देवता अपनी पारम्परिक 'जात्रा' अर्थात यात्रा शिमला, सोलन तथा सिरमौर के असंख्य गांवों से होते हुए तीन वर्षों में पूरी करता है। लोगों का कहना है कि पूराने समय में देवता अपने मित्र देवता श्रीगुल के साथ दिल्ली दरवार तक भी जाता था। परन्तु अब भीड़–भाड़ में अशुद्ध होने के डर से दिल्ली की यात्रा नहीं की जाती। यह देवता पहले वर्ष शिमला और सोलन जिला के गांवों की यात्रा करता है। दूसरे वर्ष शिमला के रानी झांसी पार्क में पहुंचता है। अगले वर्ष शिमला से सिरमौर जिला के विभिन्न गांवों की यात्रा करता है। इसकी पूरी यात्रा अपने साथ पूरा सांस्कृतिक अमला लिए चलती हैं। जिसमें देवता की पालकी उठाने वालों के साथ लगभग २०० व्यक्ति लगातार गांव दर गांव पैदल यात्रा करते हैं। जिस गांव में यात्रा का रात्रि ठहराव होता है। वहां पर मेले का रूप ले लेता है। लोग देवता के साथ माला नृत्य में मशगूल होते हैं। वादक लोकवाद्यों पर पारम्परिक धुने बजाते हैं जिस पर नर्तक पारम्परिक वेशभूषा में नृत्य करते हैं। इन्हीं नर्तकों के बीच चार कहारों अर्थात जमाण्यिों के कन्धों पर देवताकी पालकी भी नाचती है। जिस गांव में किसी देवता का मंदिर नहीं होता है वहां पर देवता अपनी चानणी में विश्राम करता है। देवता जिस रोज जिस गांव में पहुंचता है उस रोज की पूजा वहां के लोगों द्वारा की जाती है। वहां के लोगों द्वारा ही यात्रियों के जलपान की व्यवस्था की जाती है। पुरातन काल से ही जिन–जिन गांवों में देवता की यात्रा होती थी अभी भी उन्हीं गांवों से होकर ही देवता की यात्रा होती है। कई–कई गांवों में देवता के आगमन पर पशु बलि भी दी जाती है। डोमेश्वर देवता की यात्रा प्रारम्भ होन के पीछे

भी एक खास कारण बताया जाता है। एक समय की बात है कि चाईक वंश से सम्बन्धित आईचा नामक ब्राह्मण राजा जुनगा का मुख्यमन्त्री था। उसका कहना राज्य के सभी लोग मानते थे। अपने प्रभाव से उसने राजा की शक्ति क्षीण कर दी। लोग राजा की कम सुनते थे जबकि मुख्यमन्त्री की अधिक। इस से राजा उससे बहुत नाराज रहता। एक दिन मुख्यमन्त्री पालकी में बैठकर रामपुर की ओर जा रहा था। राजा ने कर्मचारियों के साथ मिल करके उसकी पालकी को ऐसे ढंकार से फिंकवाया जहां उसकी मृत्यु हो गई। ब्रह्म हत्या के दोष के कारण राजा को कई वर्षों तक कोई सन्तान नहीं हुई। कई तांत्रिकों, पुरोहितों, देवी–देवताओं को पूछा। सब ने ब्रह्म हत्या को ही कारण बताया। परन्तु इसका निवारण किसी के पास नहीं था। अन्त में राजा देवता डोमेश्वर की शरण में गया। देवता डोमेश्वर ने राजा को भलावग नामक स्थान पर चौरासी हाथ लम्बा वर्गाकार तालाब बनवाने को कहा। देवता के आदेश पर राजा ने तालाब बनवाया। उसे अश्वनी नदी जो जुनगा के साथ बहती है से भरवाया गया और वहां पर राजा ने चौरासी ब्राह्मणों और चौरासी कन्याओं को भोजनादि से तृप्त किया तथा चौरासी गऊओं का दान करवाया। अन्त में चान्दी की दो मूर्तियां आईचे की आकृति की बनवाई जिसमें से एक की स्थापना वहीं की और एक मूर्ति अपने साथ ले गये। इस उपाय के करने पर राजा साहिब क्योथल के घर पर सन्तान हुई जिसकी खुशी में राजा ने अपने समस्त राज्य में देवता डोमेश्वर की यात्राएं करवाई।

जातर के लिए देवता के रथ को तैयार किया जाता है तो सर्वप्रथम महाराज जुनगा का बहुमूल्य रेशमी वस्त्र एक पगड़ी तथा जातर का अज्ञापत्र भेजा जाता है। इसके बाद रथारूढ़ महाराज डोमेश्वर सबसे पहले अपनी माता कोटकाली के मंदिर में भेंट चढ़ाने जाते हैं तथा उस रथ में महाराज आदिशक्ति की ध्वजा लगाकर रथ में उसका आह्वान किया जाता है। जातरें तीन वर्षों में पूर्ण होने पर बूढातर (देवता की यात्रा पूर्ण होने पर मंदिर प्रवेश) के अवसर पर महाराज क्योंथल, ठाकुर ठियोग, ठाकुर घूण्ड, दरकोटी, ठाकुर कारांगल भी गुठाण में निमन्त्रित होते हैं। इस अवसर पर लगभग पच्चीस देवता अपनी प्रजा के साथ लोकयज्ञ में शामिल होते हैं। यात्रा के दौरान कुछ गांवों में सामूहिक भेज होता है जबकि कुछ जगह देवता के साथ चलने वाले यात्रियों को गांव के प्रत्येक परिवार में बांटा जाता है। इसे खींड पाणा कहते हैं। जिस समय खींड डाली जाती है उस समय हर परिवार का कोई न कोई सदस्य हाजिर रहता है। वहां का मुख्यिा एक–एक या दो–दो गांव के परिवारों की संख्या और यात्रिओं की संख्या को देखते हुए बांटता है और परिवार का वह व्यक्ति अपने हिस्से के अतिथियों को अपने साथ अपने घर ले जाता है और उसकी देवतुल्य आवभगत करता है। देवता जब अपनी निर्धारित तीन साल की यात्रा पूरी करता है तो अपने गांव आकर बड़े यज्ञ का आयोजन करता है जिसमें लोग भण्डारे में प्रसाद ग्रहण करते हैं।

इसी तरह जुब्बल का देवता बनाड़ व देशमौलिया अपने पांच दिवस के भ्रमण पर रामपुरी, प्रौंढ़ी, शिरटी तथा सुंडली की यात्रा पर निकलते हैं। इस दौरे में वे हाटकोटी स्थित मां दुर्गा के मंदिर में जाकर मिलनी भी करते हैं। मान्यता है कि जब कोई व्यक्ति देवता बनाड़ के प्रति मन्नत रखता है तो उसे एक रात्रि पूजन के लिए फेरे के दौरान अपने घर पर देवता को लाकर भ्रमण में आए सभी ग्रामीणों के जलपान की पूरी व्यवस्था है और श्रद्धानुसार देवता को सोने अथवा चांदी की वस्तु भेंट करनी पड़ती है। जिस राह से देवता गुजरते हैं श्रद्धालु उस राह पर खड़े होकर देवता को धूप–बत्ती व फूलों की मालाएं चढ़ाकर आर्शीवाद प्राप्त करते हैं। दौरे

के दौरान देवता के बजीर, भंडारी व कारिन्दे रात्रि पूजन के समय उपस्थित रहते हैं। रात्रि विश्राम के पश्चात अगली सुबह १० बजे तक पूजा अर्चना व भोजनादि करके अगले पड़ाव की ओर रवानगी होती है। यात्रा में विभिन्न स्थानों पर भक्तजन जो भेंट देवता को चढ़ाते है। उस भेंट का हिसाब–किताब देव कमेटी करती है।

जिला सिरमौर के राजगढ़ क्षेत्र के गांव बरायला में देवता विजट का मंदिर है। विजट देवता प्रतिवर्ष चूड़धार को जाता है। इस यात्रा में विजट देवता की मुख्य मूर्ति पारम्परिक ढंग से चूढ़धार लाई जाती है। यात्रा में आसपास के सभी लोग शामिल होते हैं। यहां यात्रा को 'जात्र' कहते हैं। इस यात्रा में मुख्य मूर्ति के साथ उसके एक तरफ रखी जाने वाली मूर्ति एक वर्ष तथा दूसरी तरफ रखी जाने वाली मूर्ति दूसरे वर्ष यात्रा में ले जाई जाती है। बरायला में स्थित विजट देवता के इस मंदिर में अष्टधातु की २४ चमकीली मूर्तियां स्थापित की गई हैं। मुख्य मूर्ति के दायें–बायें १२–१२ मूर्तियां अवस्थित हैं। इन्हीं मूर्तियों को बारी–बारी से प्रति वर्ष मुख्य मूर्ति के साथ इस यात्रा में शामिल किया जाता है। इस यात्रा में तीन बकरे भी साथ ले जाये जाते हैं। दो बकरे रास्ते में काटकर जातर में गये हुए यात्रियों को देवता के नाम पर खिला दिए जाते हैं। जब यात्रा चूड़धार पर पहुंच जाती है तो देवता को नहलाकर तीसरा बकरा भी काटा चाता है। यह यात्रा प्रतिवर्ष कार्तिक या भादों मास में होती है। जुब्बल का देवता क्यालू भी ३०–३५ वर्ष बाद बद्रीनाथ तथा केदारनाथ की यात्रा पर जाता है। इसके यात्रीगण यात्रा के दौरान दिन में एक बार ही भोजन करते हैं। शिमला जिले के कोटखाई उप–तहसील के घूण्ड गांव का घूण्डा नाग भी अनरू देवताओं की तरह एक लम्बे समय के अन्तराल के बाद यात्रा पर निकलता है। घुण्डा नाग केदारनाथ यात्रा के समय भिन्न–भिन्न गांवों में अपना डेरा डालता है। पहला पड़ाव घूण्डा गांव के समीप ही चम्याणा गांव में होता है। दूसरा पड़ाव गिरीगंगा में होता है। यहां पर घुंडानाग यात्रा पर प्रस्थान करने से पूर्व खोडू नामक स्थान पर स्नान करते हैं तथा अगले दिन प्रस्थान करते हैं। वापसी पर घुण्डा नाग हाटकोटी में हाटकेश्वरी मां के यहां मत्था टेकने जाता है। लौटती बार देवता का अंतिम पड़ाव फिर चम्याणा गांव में ही होता है। घुण्डानाग की यात्रा के समय भी देवता की अनुपस्थिति में लगभग सभी शुभकार्य बन्द रहते हैं। उनकी वापसी पर ही सभी कार्यों को प्रारम्भ करना शुभ समझा जाता है।

चम्बा जनपद में मणिमहेश यात्रा का विशेष मत्व है। किंवदन्ती है कि मणिमहेश झील की खोज सर्वप्रथम बाबा चरपट नाथ ने की थी। उन्होंने ही छठी शताब्दी में यहां पर पवित्र झील के किनारे शिवलिंग की स्थापना की थी। यह शिवलिंग ब्रह्मपूर वर्तमान भरमौर के तत्कालीन राजा मेरूवर्मन को राजस्थान के किसी राजा ने दिया था। यह शिवलिंग बाबा चरपट नाथ ने राधाष्टमी के दिन यहां स्थापित किया था। तब से प्रतिवर्ष बाबा अपने चेलोंसहित इस स्थान पर जाते और स्नान करते रहे। पहले पहल इस यात्रा में दस–बीस व्यक्ति जाया करते थे। धीरे–धीरे श्रद्धालु यात्रियों की संख्या बढ़ने लगी। मणिमहेश की यात्रा के लिए लोग चम्बा और कांगड़ा की तरफ से अपने–अपने झुण्ड बनाकर जाते हैं। मुख्य जुलूस बाबा चरपट नाथ का होता है। आजकल इस यात्रा में बाबा चरपट नाथ का मुहारा, झण्डे आदि चरपटनाथ की कुटिया चम्बा शहर से गाजे बाजे के साथ ले जाये जाते हैं। पूरी यात्रा चम्बा से मणिमहेश तक पैदल चलती है। पहले इस यात्रा में बाबा के पुजारी तथा अन्य भक्त लोग ही जाते थे। परन्तु अब यात्रा राजकीय सम्मान के साथ शुरू होती है। एक लोकगीत की इन पंक्तियों में इस यात्रा का विवरण

इस प्रकार किया गया है—

शिव कैलासों के वासी धौले धारों के राजा,
शंकर संकट हरना।
तेरे कैलासों रा अन्त न पाया,
अन्त वे अन्ती तेरी माया।
पहला डेरा तेरा साहू जो लगदा,
दूजा डेरा चम्बे शहरा।
तीजा डेरा महला जो लगदा,
चौथा डेरा छतराड़ी।
पंजवा डेरा तेरा खड़ामुख लगदा,
छटआ डेरा भरमौरा।
सातवां डेरा तेरा हड़सरा लगदा,
आठवां डेरा धनछोआ।
नौवां डेरा डला पर लगदा,
दसवां डेरा कैलासा।

इस गीत से आभास होता है कि किसी समय बाबा चरपट नाथ की यात्रा जुंडली साहू से शुरू होती होगी। जबकि अब यह चम्बा से प्रारम्भ होती है। यह यात्रा दसवें दिन मणिमहेश पहुंचती है। जबकि वापसी में पड़ाव कम होते हैं। मणिमहेश यात्रा पर जाने वाले श्रद्धालुओं को भरमौर में शिवजी के चेलों से कैलाश जाने की आज्ञा लेनी पड़ती है। यदि किसी को यात्रा करने के लिए चेलों द्वारा इन्कार किया जाता है तो वह भरमौर से वापस लौटता है। यदि जबरदस्ती ऊपर जाता भी है तो अनिष्ट होने की आशंका रहती है। इस यात्रा के दौरान जहां—जहां भी पड़ाव डाला जाता है, वहां पर श्रद्धालु भक्तों द्वारा लंगर की व्यवस्था की जाती है। लाहौल स्पिति के त्रिलोकनाथ में पोरी मेले के अंतिम दिन लाहुली लोग मणिमहेश के लिए यात्रा आरम्भ करते हैं। त्रिलोकनाथ से चलने वाला जत्था रास्ते में भेड़ों की बलि चढ़ाते हुए कुगतीजोत (५०१० मी०) से होते हुए पांच दिनों की दुर्गम यात्रा के बाद मणिमहेश पहुंचता है।

मणिमहेश की तरह २० आषाढ़ से १२ भादों के बीच कुल्लू जिला में स्थित श्रीखण्ड महादेव के लिए निर्मण्ड के अम्बिका माता के मंदिर से यात्रा चलती है जो बागीपुल जाओं, भीमडवारी तथा नयनसर होते हुए श्रीखण्ड पहुंचती है। कुल्लु के औटर सिराज क्षेत्र का बड़ा देवता शमशरी महादेव भी कभी—कभी श्रीखण्ड की यात्रा पर जाता है। इसमें देवता का रथ तो नहीं ले जाया जाता अपितु हाथ में उठाने के लिए एक सरकंडे में देवता का मोहरा पीढ़ा होता है। उसे ही यात्रा में शामिल किया जाता है। इस यात्रा में लोग किसी भी गांव में लोगों के घर खाना नहीं खाते अपितु सभी यात्री अपने साथ ही घर में ही बनाया हुआ भोजन ले जाते हैं। कुछ सालों पर शमशरी महादेव अपने रथ में विराजमान होकर अपने पूजा क्षेत्र की यात्रा पर निकलता है। जिसे जतरांला कहा जाता है। देवता के पूजा क्षेत्र तीन कोठी जांजा, नारायणगढ़ तथा जलोड़ी में आठ पंचायते आती हैं। इन पंचायतों में चुआई, वखनाओ, कराणा, देऊठी, बुच्छैर, कोहिला, रवणी तथा कमांद में लगभग २० गांव आते हैं। देवता अपनी यात्रा में इन सभी गांवों में

एक–एक दिन ठहरता है। जिस भी गांव में देवता ठहरता है वहां पर मेले का आयोजन होता है। हर मेले में देवता के गूर खेलते हैं। हर घर में देवता के निशान जैसे काहुली इत्यादि ले जाते हैं तथा इसकी पूजा की जाती है। निशान को उठानेवालों को लोग अनाज तथा पैसा देते हैं। जतराला में बाजा–बजन्तर बजाने वालों को भी अन्न तथा धन दिया जाता है। इसमें लोगों का अच्छा–खासा व्यय हो जाता है।

ईष्वा (नोर) का मार्कण्डेय ऋषि भी हर तीसरे वर्ष चूआकाली नामक स्थान पर यात्रा पर जाता है। जहां पांडवों द्वारा स्थापित २५ पिंडियां हैं। आउटर सिराज कुल्लु में ही खनारगी का देवता पाशाकोट बहुत वर्षों के पश्चात बंजार के साथ बाहु नामक स्थान पर बालूनाग के पास जाता है। निरमण्ड क्षेत्र में ही ग्रामपंचायत निशाणी में देवी सरमासणों को पूजा जाता है। यह देवी भी आषाढ़ मास में १२ गांवों के प्रवास पर निकलती हैं। देवी की इस यात्रा को सगाड़े भी कहा जाता है। देवी की यह यात्रा प्रतिवर्ष दो बार होती है। प्रथम यात्रा १२ गांव की आषाढ़ में तथा दूसरी यात्रा मार्गशीर्ष मास में होती है। दोनों यात्राओं का शुभारम्भ मातला गांव से होता है। उसके बाद खथांड़ा, निशानी, मरहैड़ी, रेमू, त्वार, केदस, पोखन, बागीधार, बजराह, रलु गांव होते हुए पुजारली पहुंचती है। फेरे में गूर, भंडारी, मौहता, पुजारी, बजंतरी व सभी गांववाले साथ–साथ चलते हैं। इसी क्षेत्र में देवता शियाना ऋषि जिसे लोग स्रौहणी देवता के नाम से जानते हैं सराहन में रहता है। यह भी हारगी पर जाता है। यह देवता सैंज घाटी में स्थित बनेगी गांव में अवस्थित पुण्डीर ऋषि को अपना धर्म भाई मानता है। कभी–कभी बड़ोगी वसराहन के देवता एक दूसरे के मेहमान जाते हैं। जब भी एक दूसरे के गांव जाते हैं एक दूसरे के गले मिलकर रोते हैं। इनके साथ इनकी हार के लोग भी गले मिलते हैं। ये भी आपस में धर्मभाई का रिश्ता निभाते हैं। कूईर लाम्भरी में पांच साल, सरेउलसर तीन साल बाद तथा मणिकर्ण १५–२० वर्षों के बाद जाता है। एक अन्य फेरा देवता के मुख्य गांव कुईर से शुरू होता है। बीच में मनोआ गांव में ९ दिन का मेला होता है। रोपे में तीन दिन तथा मिथनू में तीन दिन का मेला लगता है। अंतिम मेला मुहान में होता है।

कुल्लु जनपद के रूपी क्षेत्र में भी देवताओं की फेरे पर निकलने की परम्परा है। नीणू गांव का देवर्षि नारद हर वर्ष पोष मास में पोष के फेरे को पालगी, दुर्वासा ऋषि के पास जाता है। जहां पर वह दो–तीन दिन ठहरता है। इसी तरह गांव सीस को देवता जमलू हारगी के लिए गांव नजां में देवता च्यवन ऋषि के पास गांव आशणी में भृगु ऋषि के पास, गांव नीणू में देवर्षि नारद के पास, गांव नरोगी में भागा सिद्ध के पास, कोटकंढ़ी में पांच पांडवों के पास, गांव दियार में अपने गुरू त्रियुगीनारायण के पास, गांव मनिहार में गौतम ऋषि के पास, उड़सू, हवाई तथा मलाणा में देवता जमलू के पास जाता है। इसी प्रकार हवाई शियाह का देवता जमलू भी मलाणा में यात्रा पर जाता है। वापसी में मलाणा कोई निशानी साथ लाता है। यह निशानी रणसिंगे के रूप में होती है। हवाई शियाह से जब देवता पहली बार मलाणा गया था तो वहां से 'खण्डा' लाया था।

देवता च्यवन ऋशि गड़सा घाटी के नजां गांव में रहता है। यह देवता फेरे पर तब जाता है जब इसका नया रथ बनया जाता है। रथ बनाने की आज्ञा पलगी गांव में स्थित दुर्वासा ऋषि देता है। रथ बनने पर देवता कभी रूद्रनाग की यात्रा पर जाता है, कभी सैंज क्षेत्र में जाता है। यह देवता अपने रूद्रनाग के फेरे में सीस से खणी कोडा, बड़ोगी, धारा, शियाट, ऊच, शिलाह होते

हुए जाता है। वापसी में रूद्रनाग से शिलाह, शौराकन्ढी, ग्राहण, चेउदरा, मनिहार, हाणी आगे, उड़सू होते हुए नजां पहुंचता है। इन सभी गांवों में दो—दो बकरे काटने पड़ते हैं जो देवता के खजाने से ही खरीदे जाते हैं। इस फेरे में एक से डेढ़ मास लगता है। फेरे में देवता के साथ पंचवीर, ठारापेड़े, जेहर तथा माता अनुसुया के चेले चलते हैं। इन देवताओं को भी बकरे की बलि दी जाती है। वापस आने पर देवता के मंदिर के पास हवन यज्ञ किया जाता है।

आउटर सराज देउरी में खुड्डी जल की मान्यता है। यह देवता कई वर्षों के पश्चात शुकी सीऊं का दौरा करता है। शुकी सीऊं जिला कुल्लु के तहसील निरमण्ड में १५—२० परगने में पड़ता है। पिछला शुकी सीऊं का दौरा १९७८—७९ में हुआ था। दूसरा दौरा जोगीपाठ का होता है। यह स्थान जिला मण्डी में पड़ता है। यह फेरा पांच वर्ष बाद होता है। तीसरा रघुपुरगए का दौरा तीन वर्ष बाद होता है। चौथा सरेउलसर का दौरा १० वर्ष बाद होता है। कुल्लु जनपद में बहुत से स्थानों पर मार्कण्डेय ऋषि के मंदिर हैं। जिसमें थरास के मार्कण्डेय को सबसे बड़ा स्थान दिया जाता है। यह अपनी यात्रा में वहां—वहां जाता है जहां—जहां इसके दूसरे देउथड़े हैं।

नग्गर की देवी त्रिपुरा सुन्दरी कुछ वर्षों के अन्तराल पर बड़े फेरे को निकलती है। जब कोई अकाल पड़ना हो या बीमारी आने की आशंका हो तब देवी फेरे पर जाने की इच्छा प्रकट करती है। फेरे पर जाने का दिन देवी स्वयं निर्धारित करती है। निर्धारित दिन देवी नग्गर से चलकर कुल्लु पहुंचती है। दूसरे दिन पार्वती घाटी में शरशाड़ी या जरी में ठहरती है। देवी का तीसरा पड़ाव मणिकर्ण होता है। वहां पर यज्ञ करके सबको भोजन करवाती है। चौथा पड़ाव रशोल गांव में होता है। पांचवें पड़ाव के लिए रशोल से मलाणा जाती है। मलाणा के नजदीक पहुंचने पर मलाणावासी भेखल का बाढ़ लगाकर देवी का रास्ता रोकते हैं। तब देवी जमलू देवता को बकरा भेंट करती है। उसके बाद मलाणा के लोग देवी का रथ उठाकर उसे गांव में ले जाते हैं। वहां पर देवता के साथ मिलन होता है। मलाणा में दो—तीन दिन ठहरने के बाद देवी चन्द्रखणी जोत होते हुए रूमसू गांव में पहुंचती है। रात्रि विश्राम रूमसू में करने के बाद नग्गर लौटती है। देवी मार्ग में जहां—जहां भी रात्रि विश्राम करती है तो वहां के गांव वाले देवी के साथ आये यात्रियों की आवभगत करते हैं उन्हें भोजन करवाते हैं। जहां—जहां कोई धार या जोत पड़ता है वहां—वहां या तो बकरा काटा जाता है या हलवे का प्रसाद बनाकर जोगणियों व स्थान देवताओं को अर्पित किया जाता है। नग्गर लौटने पर हवन यज्ञ किया जाता है और भण्डारे का आयोजन भी किया जाता है।

तीर्थ यात्राएं

हिमाचल प्रदेश के लोग प्रकृति के जिस तत्व को सबसे अधिक अधिमान देते हैं तो वह है इनकी जलप्रियता। यथार्थ में यहां के प्रत्येक उत्सव पर निकटस्थ नदी, बावड़ी, जलस्रोत, जलकूप आदि में स्नान करने की प्रथा प्रचलित है। यही कारण है कि हमारे अधिकांश तीर्थ विशिष्ट नदियों अथवा सरोवरों के रूप में तथा उन्हीं से सम्बन्धित हैं। माना जाता है कि पृथ्वी की उथल—पुथल के समय जलप्लावन के बाद सबसे पहले उतरी भारत के प्रदेश बाहर निकले थे।

हिमाचल के सभी देवी—देवता तीर्थ यात्रा पर जाते हैं। सभी के अपने—अपने तीर्थस्थान हैं। उल्लेखनीय है कि जो भी देवी—देवताओं के तीर्थस्थान होते हैं वे कभी भी नहीं सूखते। चाहे

कितना भी सूखा क्यों न पड़े। जिस–जिस तीर्थस्थाल पर देवता स्नान करने जाते हैं उन तीर्थस्थलों को लोग भी तीर्थस्थल मानकर अपने शरीर को शुद्ध करते हैं। तीर्थ स्थल चश्मे, बावड़ी, सरोवर, झील, नदी के संगम तथा उसके उद्‌गम स्थल के रूप में विद्यमान रहते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि हिमाचल के लोग जल पूजा के प्रबल समर्थक हैं। वास्तव में जल के बिना जीवन अधूरा होता है। इसी सत्य को मानते हुए यहां के देवी–देवता जल पूजा को महत्व देते हैं। हिमाचल के लगभग सभी स्थान किसी न किसी देवता के नाम से जुड़े हुए हैं। बिलासपुर जिले के मार्कण्डेय का स्नान का विशेष महत्व है। माना जाता है कि वेदों के रचयिता महर्षि वेदव्यास यहां स्थित गुफा के रास्ते से प्रत्येक सुबह स्नान के लिए मारकण्ड जाया करते थे। इसी उपलक्ष्य में यहां प्रतिवर्ष बैशाखी की पूर्व संध्या में स्नान करने के लिए श्रद्धालुजन उमड़ पड़ते हैं। इसी तरह व्यास नदी के उद्‌गमस्थल रोहतांग जोत के पास व्यासकुण्ड में भी लोग २० भादो को स्नान करने जाते हैं। देवी–देवता यहां पर पवित्र स्नान के लिए समय–समय पर जाते रहते हैं। लोग भी देवी–देवताओं के सरोवर पर समय–समय पर स्नान करने हेतु जाते हैं। कुल्लु की लगघाटी में भूमतीर होते हुए सीधी चढ़ाई चढ़ने पर १५ किलोमीटर की दूरी पर स्थित है माठासर। यह सर शिखर पर १०० मीटर के घेरे में फैला हुआ है। यहां पर मार्गशीर्ष या असौज की पूर्णिमा के बाद वीरवार या सोमवार के दिन 'नियासंग' महोत्सव का आयोजन होता है। उक्त दिन कतरूसी नारायण अपने बाजे गाजे तथा मलेघा गूर के साथ प्रातः १०–११ बजे जठानी गांव से प्रस्थान करते हैं। यह यात्रा देवधुन के साथ माठासर की धार पर एक घण्टे में पहुंचती है। वहां पहुंचने पर सर्वप्रथम देवी फुंगणी की बलि दी जाती है। उसके बाद कठियाले द्वारा हारियान से जो एक पत्था अनाज इकट्ठा किया होता है, की रोटियां बनाई जाती हैं। इन रोटियों को भोग लगाने के बाद आए हुए यात्रिओं में बांटा जाता है। कुछ लोग वहां के लिए दंदोली, भले आदि पराहुड़ रूप में सुखना पूरा होने पर मन्नत के रूप में लाते हैं। उन्हें भी देवी को अर्पित करने के बाद सभी श्रद्धालुओं में वितरित किया जाता है। देवी प्रसाद इसी तालाब के जल से तैयार किया जाता है। इसके बाद कतरूसी नारायण के गूर से हारियान अपनी सुख समृद्धि के लिए वचन मांगते हैं।

माठासर से कुछ दूरी पर बड़ासर है। यहां पर फाल्गुन, बैशाख, श्रावण, मार्गशीर्ष तथा असौज में लोग पटड़ी के रूप में देवी फुंगणी को प्रसाद चढ़ाने जाते हैं। इस सर के बीचों–बीच गहरा खोल है, जहां से सर का स्वच्छ जल ऊपर की ओर निकलता है। यह जल यहां से नीचे स्थित भल्याणी गांव की बावड़ी में भी निकलता है। बड़सर का घेरा लगभग १२० वर्ग मीटर में फैला हुआ है। लोगों का कहना है कि इस सर को देवी कुहटी कुपड़ी ने बनवाया है। कहते हैं कि यह देवी दिल्ली से ओशंग, शुंगर, खनियारगी आई है, जहां खनियारगु ठाकुर के साथ युद्ध कर उसे कलाहीन करके कला की धार पर पहुंची है, जहां उसने पानी का एक सर तैयार किया। इस सर का पानी देव मंदिर तथा घर की अशुद्धि दूर करने हेतु प्रयोग में लाया जाता है। भाद्रपद की बीस को लोग पवित्र स्नान के लिए यहां आते हैं। स्नान के बाद देवी–देवता को प्रसाद चढ़ाते हैं। विभिन्न अवसरों पर देवता लोग पवित्र स्नान के लिए अपने जलतीर्थों पर जाते हैं।

बीह भादों का स्नान : कुल्लु जिले में बीस भाद्रपद की स्नान का विशेष महत्व है। इस दिन सभी लोग पवित्र तीर्थ स्थानों में स्नान पर जाते हैं। बहुत से देवता भी बीस भादों को स्नान करते हैं। मणिकर्ण घाटी के देवता जगथम तथा तोस का देवता जमलू बीस भादों को द्रौणी–प्रौणी

अर्थात रूद्रनाग में स्नान करते हैं। इसी दिन लोग खीरगंगा, मानतलाई, मणिकर्ण, वशिष्ट, क्लाथ, भृगुसर, दशौहर झील, व्यासकुण्ड, दियार से पीछे शांदी पाणी में पवित्र स्नान करते हैं । मान्यता है कि इस दिन ये सभी तीर्थ स्थल जड़ी–बूटियों से भरे रहते हैं। जिससे स्नान करने पर शरीर को चर्मरोगों से छुटकारा मिलता है। जो लोग ऊंचे पहाड़ों में स्नान करने नहीं जा सकते वे अपने पास के जलस्रोत, बावड़ियों में ही स्नान करके पुण्य कमाते हैं। जहां खड्ड या नदी बहती है वहां पर भी स्नान किया जाता है। इसके अतिरिक्त जहां दो नदियों का संगम हो वहां के स्नान को भी पवित्र माना जाता है।

दशहरे से वापसी पर पवित्र स्नान : कुल्लु जनपद में वर्ष में एकबार आश्विन शुक्ला दशमी को कुल्लु के ढालपुर मैदान में विजयदशमी का मेला लगता है जिसमें जिले भर के लगभग ३६५ देवी–देवता शिरकत करते हैं। मेले से वापस जाने पर बहुत से देवी–देवता शुद्धिकरण हेतु अपने–अपने तीर्थस्थान पर स्नान करते हैं। हवाई शियाह के देवता जमलू (जमदग्नि) दशहरे से वापस जाने पर भून्तर व्यास और पार्वती के संगम स्थल जिया में स्नान करते हैं। स्नान में झरी में संगम स्थल का पानी भरकर देवता के रथ पर छिड़का जाता है।

मंदिर निर्माण के बाद स्नान : जब किसी देवी–देवता के नये मंदिर का निर्माण किया जाता है या रथ में जड़ित सोने चांदी के आभूषणों या मोहरों की मरम्मत की जाती है तो उसके बाद सभी देवता अपने–अपने तीर्थस्थानों पर पवित्र स्नान के लिए जाते हैं। लाहाशणी गांव का गर्गाचार्य इसके बाद भून्तर संगम पर स्नान करने जाता है। देवता के नये रथ के निर्माण के बाद भी तीर्थस्नान करने की परम्परा है। जब देवी–देवता का प्रबन्ध व्यवस्था में शामिल व्यक्ति गूर, पुजारी, कारदार तथा ढौंसी का देहान्त होता है तो तब भी देवता अपने आप को अशुद्ध हुआ समझता है। शुद्धिकरण हेतु देवता द्वारा पवित्र स्नान करना अनिवार्य होता है। नये गूर के चयन होने पर भी देवता तीर्थ स्नान करता है।

उझी घाटी के गांव रियाड़ा का देवता जौउसू नाग नये मंदिर मौढ़ और नया निशान बनने पर स्नान करने वशिष्ट जाता है। देवता सुबह चल कर शाम को गोशाल पहुंचता है। यहां स्थित लाऊची खानदान के अठारह परिवार में जितने व्यक्ति हाते हैं ये प्रति व्यक्ति सेर चावल देते हैं और देवता के साथ आये लोगों के ठहरने की व्यवस्था करते हैं। लोगों में प्रचलित मान्यता के आधार पर वशिष्ठ के गर्म जल स्रोत पापमुक्ति के पर्याय केवल मानव जाति के लिए ही नहीं बल्कि देवताओं के लिए भी हैं। एक जनश्रुति के अनुसार एक बार राम ब्रह्म हत्या के आरोपी बन गये थे। इस पाप से मुक्ति के लिए अश्वमेध यज्ञ किया गया। अनुष्ठान में ब्रह्मर्षि वशिष्ट की उपस्थिति अनिवार्य थी। यज्ञ में ऐसा कोई भी नहीं था जो वशिष्ट को पहचानता था। चूंकि वशिष्ट ऋषि कुल पुरोहित थे। इसलिए श्रीराम ने वशिष्ट की खोज में शृंगी ऋषि और लक्ष्मण को भेजा। ऋषि वशिष्ट इसी स्थल पर तपस्या में लीन थे। ऋषि के खोजने के बाद लक्ष्मण और शृंगी ऋषि यहां रूके थे। ज्यादा सर्दी के कारण लक्ष्मण ने गुरूजी के स्नान के लिए धरती पर अग्निवाण निकाल कर गर्मपानी की धारा प्रस्फुटित की थी। गुरूजी ने तब सर्वप्रथम लक्ष्मण और शृंगी ऋषि को स्नान करने को कहा था जिससे उनकी सारी थकान जाती रही। यही कारण है कि बहुत से देवता यहां पवित्र स्नान हेतु आते हैं।

बावड़ी स्नान : हिमाचल प्रदेश में अधिकांश गांव किसी बावड़ी, झरने या नदी के आसपास अवस्थित हैं। ताकि जल की आवश्यकता को पूरा किया जा सके। मनुष्य के लिए जल ही

जीवन है। जन्म से मृत्यु पर्यन्त जल की आवश्यकता पड़ती है। चाहे भोजन तैयार करना हो, चाहे साफ–सफाई करनी हो हर मौके पर जल आवश्यक होता है। देवी–देवताओं की पूजा के लिए स्नान हेतु गांव की बावड़ी या चश्मे का जल ही प्रयुक्त होता है। देवताओं का प्रथम तीर्थ ये जलस्रोत ही होते हैं। दूर से नाली द्वारा लाये हुए जल को देवपूजा में प्रयुक्त करना वर्जित होता है। प्रातः पूजा से पूर्व पुजारी स्वयं स्नान करता है। तत्पश्चात देवता की झारी में पास की बावड़ी से जल लाता है। तब उस जल से देवता के सभी मोहारों, छत्रों तथा आभूषणों को साफ करता है। तत्पश्चात उसी जल से चन्दन घिस कर देवता के मुख–मोहरों व छत्रों में टीका लगाता है। धूप जलाता है। तत्पश्चात पूजा करता है। इस कारण स्थानीय बावड़ी में अशुद्ध व्यक्ति द्वारा जल भरना वर्जित माना जाता है। धाराकंडा के गर्गाचार्य के मंदिर के पास एक बावड़ी है। इस बावड़ी के सम्बन्ध में लोगों की मान्यता है कि जिस वर्ष इस बावड़ी में जलस्तर बढ़ जाता है और बावड़ी से बाहर निकलने लगता है तो उस वर्ष वर्षा अधिक होने की सम्भावना होती है और जिस वर्ष बावड़ी का जल सूखने लगता है तो उस वर्ष सूखा पड़ने की सम्भावना रहती है।

काहिका के बाद तीर्थ स्थान : काहिका उत्सव में छिद्रा की जाती है। इसमें नौड़ जाति का पुनर्जन्म होता है। काहिका के बाद भी बहुत से देवता तीर्थ यात्रा पर जाते हैं। कुल्लु जनपद के जाणा गांव का देवता जीवनारायण काहिका के बाद तीर्थ स्नान के लिए खीरगंगा जाता है। यह यात्रा नौ दिन की होती है। खीरगंगा जाते हुए देवता मणिकर्ण के गर्म जल तथा रूद्रनाग के पवित्र जल में स्नान करता है। तत्पश्चात खीरगंगा में स्नान करता है। जीवनारायण की तीर्थ यात्रा का एक नियम यह भी है कि वापसी में पार्वती के दूसरी ओर जाना वर्जित होता है। एकतरफ होकर ही वापस जाणा पहुँचना पड़ता है। मणिकर्ण घाटी की देवी भोटन्ती जब खीरगंगा में स्नान के लिए जाती है तो वापसी में मणिकर्ण तक अपने रथ के ऊपर घून्ड डालती है।

निशान स्नान : कई बार देवताओं के रथ का स्नान के लिए जाना सम्भव नहीं होता। ऐसी स्थिति में देवता के निशान घण्टी, धड़छ, छड़ी, शंख इत्यादि को ही स्नान के लिए ले जाया जाता है। बहुत से देवता जिनके रथ नहीं बने होते तीर्थ यात्रा के लिए इन्हीं निशानों को ले जाते हैं। इनको पवित्र जल में डुबोने के बाद झारी में जल भर कर लाते हैं। इन निशानों को पुजारी या गूर ही उठाते है। रूपी घाटी की कोठी कोटकंडी के पांच पांडवों का रथ नहीं है केवल करडू है। इसके केवल निशान ही रूद्रनाग तीर्थ स्नान पर जाते हैं। कई देवता अपनी तीर्थ यात्रा को जाते समय रास्ते में पड़ने वाले देवताओं को बलि भी देते हैं। कुल्लु जनपद के गांव दियार के त्रियुगीनारायण तथा निगना–कमांद की देवी मडासना जब रूद्रनाग तीर्थ स्नान पर जाते हैं तो रास्ते में ये छरौड़ नाले के पास कोटकंढ़ी के पंचवीर को और शाटनाला के पास ठारहपेड़े को बकरे की बलि देते हैं। यह देवता रूद्रनाग में तीर्थ स्नान से पूर्व भी बलि देते हैं।

सरोवर स्नान : बंजार क्षेत्र के अधिकांश देवता सरेउलसर झील में स्नान करने जाते हैं। इसी तरह रूपी घाटी के देवता भी समय–समय पर सरोवर स्नान करते हैं। नीणू का देवर्षि नारद असूज की सक्रांति के दूसरे दिन प्रतिवर्ष शोन्ढाधार नामक स्थान पर अपने सरोवर में स्नान करने जाता है। सरोवर में स्नान करने के लिए देवता को सरोवर में ले जाया जाता है। वहां पर देवता को इतना झुकाया जाता है कि उसके सिर के बाल सरोवर से छू जाएं। जब बालों का सरोवर के जल से स्पर्श होता है तो देवता की घन्टी से जल छिड़का जाता है। तत्पश्चात गड़वा भरा जाता

है। मण्डी जनपद के देवता पराशर ऋषि के तो मेले अपनी झील के पास ही होते हैं। जिसमें आषाढ़ की सक्रांति को होने वाला मेला प्रमुख है। इस मेले में इस देवता को अपने भण्डार वाहन्दी से यहां पराशर झील में लाया जाता है और देवता स्नान करता है। इस दिन आसापास के अन्य कई देवता भी झील में पवित्र स्नान करते हैं। इसके बाद हजारों की संख्या में श्रद्धालु झील में स्नान का लाभ उठाते हैं। इसी प्रकार भून्तर में भी इसी दिन भूईणू देवता का संगम स्नान करता है। पराशर स्नान को 'सौरा नाहुली' और भून्तर स्नान को 'तौरा नौहुली' कहते हैं। सरेउलसर में देवस्नान की प्रक्रिया अलग किस्म की है। यहां पर सन २००० में बूढ़ी नागिन जिसका यह सरोवर है उसका पुत्र रियासी नाग स्नान करने २० वर्ष बाद आये। स्नान के लिए दोनों देवरथों में लम्बी–लम्बी रस्सियां बांधी जाती हैं। दो पुजारी अपने कंधों पर रथ को उठाते हैं। तत्पश्चात दोनों रथों को सरोवर में स्नान के लिए प्रविष्ट किया जाता है। रथों को सरोवर में डुबोते हैं। डूबने के पश्चात रथों को रस्सों से खींच कर बाहर लाया जाता है और पुनः पुजारी के कन्धों पर उठाया जाता है।

गूर द्वारा स्नान

कुछ देवता गूर के माध्यम से स्नान करते हैं। जब तीर्थस्नान में देवता को स्नान करना होता है तो वे अपने चेले को स्नान के लिए भेजते हैं। गूर स्नान करने के बाद वापिस मंदिर आते हैं और देवता के प्रांगण में आकर लोगों की पूछ का निवारण करते हैं। मणिमहेश झील में सर्वप्रथम चेला ही झील में स्नान करता है। तत्पश्चात ही वह लोगों की पूछ का जवाब देता है। यह स्नान कृष्ण जन्माष्टमी और राधा अष्टमी के दिन होता है।

सागर मंथन

कुल्लू जनपद के बन्जार क्षेत्र में बाहु नामक स्थान में भादों मास की ऋषि पंचमी के एक दिन पूर्व बालू नाग का जन्मदिन मनाया जाता है। इस दिन देवता मंदिर के सामने स्थित तालाब में स्नान करता है। स्नान में देवता का गूर देवरथ तथा हारियान को तालाब के छींटे डालता है। स्नान करने के बाद देवता के रथ के ऊपर मेमना फैंक कर काटा जाता है, जिसे 'उआरना देना' कहते हैं। उसके बाद देवता का गूर अपनी भारथा सुनाता है। देव भारथा सुनाने के बाद देवता का पुजारी लोहे के गुर्ज से मंदिर के अन्दर एक निश्चित स्थान पर खोदना शुरू करता है। इसमें पत्थर के चक्के के नीचे से एक जलकुण्ड निकलता है। जलकुण्ड दिखने पर सभी लोग देवता की जयकार करते हैं। उसके बाद पुजारी चांदी की कटोरी से जल निकाल कर घटोत्कच्छ के स्थान की तरफ फैंकता है। तत्पश्चात जल देवता के गूर को पिलाया जाता है। गूर द्वारा पानी पीने की इस प्रक्रिया को 'गाडू ढालना' कहते हैं। मान्यता है कि जो भी इस कार्यवाही को देखता है उसे शुभ फल प्राप्त होते हैं। गड़वा ढालने के बाद जलकुण्ड में फूल अर्पण करने के बाद जलकुण्ड को उसी पत्थर द्वारा ढका जाता है। उसके ऊपर हवन किया जाता है और उस गुर्ज को साफ करके वहां पर एक भेड़ की बलि दी जाती है।

डॉ. सूरत सिंह ठाकुर
राजकीय महाविद्यालय
कुल्लू (हि.प्र.)

गुरू गोविन्द सिंह तथा नादौन का युद्ध

• डा० रमेश शर्मा

1690 ई० में पहाड़ी राजाओं तथा औरंगजेब की सेना के मध्य युद्ध का वर्णन मिलता है। गुरु गोविंद सिंह द्वारा रचित आत्मकथात्मक काव्य–रचना 'विचित्र नाटक' के नवम अध्याय में इस का विस्तृत विवेचन उपलब्ध है। नादौन, जिला हमीरपुर के संबंध में इस युद्ध का विशेष महत्व है क्योंकि इस युद्ध में जहाँ एक और मुगल सेना की पराजय हुई थी वहीं दूसरी ओर गुरु गोविंदसिंह के बिताए नौ दिन व पहाड़ी राजाओं की सहायता इसका दूसरा प्रमुख बिन्दु है। युद्ध की पृष्ठभूमि में औरंगजेब दक्षिण भारत की विजय में तल्लीन था। उसी समय कोटकहलूर, नादौन, गुलेर जसवाँ सहित २२ राजाओं ने कर देना बंद कर दिया। इस कार्य के लिए मियांखान दिल्ली से जम्मू पहुँचा। उसने अपने विश्वस्त सेनापति अलफ़खान को कर एकत्रित करने के लिए भेजा। इसी संघर्ष में कहलूर के राजा भीमचन्द ने आनन्दपुर साहिब से गुरु जी को सहायतार्थ बुलाया। २१ मार्च १६९० ई० को बंगाणा, धनेटा और मसेह खड्ड के रास्ते गुरु जी वर्तमान गुरुद्वारे के स्थान पर नादौन पहुँचे तथा लगभग दो दिन स्थिति का जायज़ा लिया व युद्ध की रणनीति को अन्तिम रूप दिया। भीमचन्द के साथ राजसिंह, नांगलू, पांगलू, वेदडोल, गुलेर के वीरों ने गुरु जी का साथ दिया। राजा कृपाल चंद तथा दयालचन्द अलफ से पराजित हुए थे तथा उन्होंने अलफखान का साथ दिया।

नवरस पहाड़ी पर अलफखान ने काठगढ़ बनाया जो तीर और तोपों से सुरक्षित था। यह युद्ध लगभग अढ़ाई दिन चला था। दोनों ओर से भीषण मारकाट हुई। ऐसी मान्यता है कि बाघनाला में अढ़ाई घड़ी खून बहता रहा। 'विचित्र नाटक' में गुरुजी ने योद्धाओं की वीरता की प्रशंसा की है। न केवल अपने पक्ष के बल्कि शत्रु पक्ष के वीरों के पराक्रम का सटीक चित्रण भी किया है।

बहुत काल इह भाँति बितायो। मियाँ खान जम्मू कह आयौ।।
अलफखान नादौन पठावा। भीमचंद सिंह बैर बठावा।।
जुद्ध काज नृप हमैं बुलायो। आप तपन की ओर सिधायो।।
तिन कठगढ़ नवरस पर बाँधो। तीर तुफंग नरेसन साधो।।
तहाँराजसिघं बली भीमचंद। चढ़ो रामसिघं महाते बंदं।।
सुखदेव गाजी जसारोट राजं। चढ़े क्रुध कीने सर्व काजं।।
पृथीचन्द चढ़ायो डड्ढवारं । चले सिद्ध है राज काजं सुधारं।।
करी ढूक ढोअं किरीपाल चंदं। हटाए सवै मारि कै वीर वृंदं।।

विचित्र नाटक ९(१–४)

"आनंदपुर में बहुत समय बिताया। उन्हीं दिनों मियांखान जम्मू पहुँचा। उसने अपने सहकारी अलफखान को नादौन भेजा। अलफ़खान ने भीमचन्द से शत्रुता बढ़ा ली। भीमचन्द ने युद्ध में सहायता के लिए हमें बुलाया तथा स्वयं अलिफखान से युद्ध करने आगे बढ़ा। नादौन में अलफखान ने नवरस पहाड़ी पर काठ का किला बनाया तथा उसके सहयोगी राजाओं ने उसे

तीर और तोप से सुरक्षित बनाया।

वहाँ राजा राजसिंह तथा शक्तिशाली भीमचन्द ने महातेजस्वी राजा रामसिंह के साथ मिलकर नवरस की उस पहाड़ी पर धावा बोल दिया। जसरोट का राजा सुखदेव गाजी भी अपनी सेना सहित उस पहाड़ी पर क्रोधित होकर आक्रमण करने पहुँचा। डडवालिया राजा पृथी चंद भी वहाँ पहुँचा। ये सभी कृपालचंद से भिड़े जिसने अपने भीषण प्रहारों से इन राजाओं को पीछे धकेल दिया।"

वे आगे लिखते है कि दयालचन्द विझड़वाल और कृपालचंद ने इन राजाओं को पहाड़ी पर नहीं चढ़ने दिया वे क्रोधित होकर दाँतपीस कर नीचे खड़े रहने के लिए विवश हुए। उधर शत्रु ने विजय दुंदुभी बजानी शुरू कर दी। तब भीमचन्द अत्यधिक क्रोधित हुआ उसने हनुमान का जाप किया तथा गुरुजी को उपने साथ बुलाकर पूरी शक्ति से पुन: आक्रमण किया। भीषण मारकाट एवं रक्तपात हुआ। कृपालचंद ने बड़ी वीरता से युद्ध किया तथा पहाड़ी राजाओं की सेना को भारी हानि पहुँचाई। तब गोबिंदसिंह जी ने बंदूक संभाली। बाद में बाण वर्षा की। चार वाण इकट्ठे चलाए। तीन बाएं हाथ से तथा एक दाएं से। निश्चित तौर पर उनसे हुए लक्ष्य भेद का पता हीं चल सका। इसी क्रम में यह युद्ध चलता रहा तथा खूनी नाला या बाघनाला खून से एक घंटे तक भरा रहा। अन्त में अलफखान की सेना परास्त हुई तथा नदी व्यास के दूसरी ओर भाग गई। तब गुरुजी ने अपने साथियों सहित गुरुद्वारे के स्थान पर शिविर में आकर तीन दिन विश्राम किया। वापसी में अलसान में उन्होंने गाँव वालों को दंडित किया जो कि संभवत: उन्हें खाद्य सामग्री देने से मना कर रहे थे। बंगाणा के रास्ते वे पुन: आनन्दपुर पहुँचे।

इस युद्ध के परिणामस्वरूप औरंगजेब पंजाब में उठ रही इस शकित से चिंतित हुआ तथा उसने और शक्तिशाली सेना इस क्षेत्र में भेजी जो अलग विषय है। नादौन के युद्ध के पश्चात् पहाड़ी राजाओं ने फिर मुगल सेना से संधि कर ली थी। भंगाणी के युद्ध के बाद यह गुरु जी द्वारा लड़ा गया दूसरा युद्ध था लेकिन औरंगजेब की सेना को यह पहली टक्कर थी। इस युद्ध ने आजीवन मुसलमानों के साथ लड़ने की भूमिका तैयार की जो उनकी जीवन लीला समाप्त होने तक जारी रही इस वर्णन में तत्कालीन राजाओं के क्षुद्र स्वार्थ उभर कर सामने आते हैं। कुछ वीर योद्धाओं का चित्रण इस युद्ध में हुआ है उनके विषय में अधिक जानकारी हेतु प्रयास व शोध अपेक्षित है। इतिहास के अनेक पन्ने इस नगर की सांस्कृतिक धरोहर को सुसज्जित किए हुए हैं। आधुनिक काल की यह युद्ध घटना इसका एक महत्त्वपूर्ण घटक है। जहां गुरु गोविन्द सिंह ने अपने साथियों सहित इस युद्ध के लिए शिविर लगाया था वहाँ गुरुद्वारा बना है जिसके वर्तमान स्वरूप का निर्माण १९२५ ई० में हुआ था। इससे लगभग सौ वर्ष पूर्व महाराजा रणजीतसिंह ने इसे गुरुद्वारे का स्वरूप प्रदान किया था। इसी स्थान पर भव्य पाँच मंजिला गुरुद्वारा बनाने का कार्य प्रारम्भ हो रहा है। यह कार्य तख्त केशगढ़ (आन्नदपुर साहिब) के प्रबन्धन के अन्तर्गत होगा। इस समय सराय, लंगर व सत्संग भवन इस परिसर में उपलब्ध है।

डॉ. रमेश शर्मा
महाविद्यालय हमीरपुर (हि. प्र.)

शोध संस्थान की गतिविधियां

त्रिदिवसीय राष्ट्रीय परिसंवाद :

ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान, हमीरपुर, नेरी, जिला हमीरपुर (हि०प्र०) द्वारा शोध संस्थान परिसर में वैशाख शुक्ल ५,७,८ कलियुगाब्द ५११० तदनुसार १०, ११, १२ मई, २००८ को ***लोक परम्परा में सृष्टि रचना विचार*** विषय पर त्रिदिवसीय राष्ट्रीय परिसंवाद का आयोजन हुआ। देश के विभिन्न स्थानों यथा गुवाहाटी, कलकत्ता, गाज़ियाबाद, नोएडा, राजस्थान, रायपुर (छतीसगढ़), दिल्ली, जींद, जालन्धर, होशियारपुर, शिमला, कुल्लू, लौहोल—स्पिति, हमीरपुर, ऊना से ३० विद्वान परिसंवाद में भाग लेने आए थे।

सार्वजनिक उद्घाटन :

परिसंवाद का सार्वजनिक उद्घाटन वैशाख शुक्ल ५, कलियुगाब्द ५११० (१० मई, २००७) को प्रात: ११ बजे "उत्तम हिन्दू" जालन्धर, के प्रधान सम्पादक माननीय इरविन खन्ना जी की अध्यक्षता में हुआ। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि विश्व हिन्दू परिषद के अन्तर्राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री अशोक सिंघल जी एवं विशिष्ट अतिथि हिमाचल प्रदेश के मुख्यमंत्री माननीय प्रो. प्रेम कुमार जी धूमल थे।

स्मृति शोध संस्थान में तीन उद्घाटन :

परिसंवाद के सार्वजनिक उद्घाटन के पूर्व शोध संस्थान के प्रवेश द्वार एवं राजा हमीर चन्द राष्ट्रीय संग्रहालय का उद्घाटन मुख्य अतिथि माननीय श्री अशोक सिंघल जी के करकमलों द्वारा सम्पन्न हुआ।

शोध संस्थान की त्रैमासिक पत्रिका :

"इतिहास दिवाकर" का तीसरा उद्घाटन कार्यक्रम के अध्यक्ष माननीय ईरविन खन्ना जी के करकमलों द्वारा हुआ।

शोध पत्र वाचन का प्रथम सत्र सार्वजनिक उद्घाटन के बाद सांय ३ बजे माधव भवन के सभागार में हुआ।